परमपूज्य श्री पद्मप्रभमलधारिदेव मुनिराज विरचित

श्री नियमसार कलश

(हिन्दी पद्यानुवाद)

1 By पंडीत अभयकुमार जैन देवलाली

जीव अधिकार

(हरिगीतिका)

जो भवजयी होकर प्रकाशित, सुगत शिव गिरिधर कहो।
वागीश अथवा जिनप्रभू की, वन्दना करता अहो॥
आपके होते हुए क्यों नमूँ, मुझ-सम हीन जो।
मोहवश अरु कामवश शिव विष्णु ब्रह्मा बुद्ध को॥1॥

दोहा

जो श्री जिन-मुख-कमल का, वाहन है अभिराम।
दो नय से सबकुछ कहे वाणी उसे प्रणाम॥2॥

(हरिगीतिका)

सिद्धांतरूपी श्रीपति हैं सिद्धसेन मुनीन्द्र जो।
अकलंक मुनिवर तर्करूपी पंकजों को सूर्य जो॥
पूज्यपाद मुनीन्द्र हैं जो शब्द-सिन्धु चन्द्र सम।
वन्दन इन्हें, इन गुण सहित मुनि वीरनन्दि को नमन॥3॥

दोहा

भव्यजनों की मुक्ति को अरु आतम की शुद्धि।
नियमसार टीका कहूँ, यह तात्पर्यवृत्ति॥4॥

(वीरछन्द)

परिग्रह का आग्रह छोड़ो बुध ! करो उपेक्षा इस तन की।
चिन्मय तन जो पूर्ण निराकुल करो भावना उस तन की॥19॥

शुभ अरु अशुभ राग क्षय करने तथा मोह क्षय करने से।
द्वेषरूप जल पूरित मन-घट को समूल क्षय करने से॥
नित्य उदित निरुपधि सर्वोत्तम प्रगटे ज्ञान प्रकाश पवित्र।
भेदज्ञान-तरु का सत् फल है वन्द्य, जगत को मंगल नित्य॥20॥

जो अन्तर्मुख अव्याबाधित, आनन्द में जिसका विस्तार।
सहज दशा जिसकी विकसित है अपने में है सहज विलास॥
लीन सदा चित् चमत्कार में तमनाशक है ज्योति महान।
जयवन्तो सम्पूर्ण मोक्ष में सहज ज्ञान शाश्वत अभिराम॥21॥

सहज ज्ञान साम्राज्य अहो जिसका सर्वस्व शुद्ध चेतन।
निज आतम को लखकर होता हूँ मैं निर्विकल्प चिद्घन॥22॥

दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप जो एक निजातम चित् सामान्य।
वह प्रसिद्ध शिवपथ मुमुक्षु को, इसके बिना न मोक्ष सुजान॥23॥

(हरिगीतिका)

परभाव होते हुए भी जो सहज गुण-मणि खान है।
जो पूर्ण ज्ञान स्वरूप निज शुद्धात्म तत्त्व महान है॥
उस एक को जो तीक्ष्णबुद्धि शुद्धदृष्टि नर भजे।
परमश्रीमय कामिनी का वह पुरुष वल्लभ बने॥24॥

पर-गुण तथा पर्याय हैं, पर जो पुरुष उत्तम अहा।
उनके हृदय पंकज विराजित एक कारण आत्मा॥
निज से हुआ उत्पन्न परम-ब्रह्म वह शुद्धात्मा।
तुम भज रहे, जल्दी भजो, हो वह तुम्हीं भव्यात्मा॥25॥

(वीरछन्द)

कभी सद्गुणोंयुत विलसित है और कभी अशुद्ध गुणरूप।
कभी सहज पर्याय सहित अरु कभी मलिन पर्याय स्वरूप॥
जो इन सबसे सहित तथापि इन सबसे है रहित अहो।
सकल अर्थ की सिद्धि हेतु उस जीव तत्त्व को भाउँ नमो॥26॥

बहु विभाव होने पर भी जो करते परम तत्त्व अभ्यास।
अतः प्रवीण हुई है जिनकी बुद्धि शुद्धदृष्टि का वास॥
"समयसार से अन्य कुछ नहीं" वे नर यह श्रद्धा करते।
शीघ्र परमश्रीरूपी सुन्दर नारी के वल्लभ होते॥27॥

दैवयोग से हे प्रभु ! यदि मैं पाऊँ स्वर्ग, नरक, नर-लोक।
विद्याधर, नागेन्द्र नगर हो या फिर होवे ज्योतिष-लोक॥
जिनपति के भवनों में अथवा अन्य कोई भी हो स्थान।
किन्तु न हो कर्मोद्भव, होवे पुनः पुनः तव भक्ति महान॥28॥

विविध महावैभव नरेश के सुन-सुन कर अवलोकन कर।
हे जड़मति! क्यों व्यर्थ प्राप्त करता तू क्लेश महादुखकर॥
वे मिलते हैं पुण्योदय से पुण्य मिले जिनपूजा से।
जिनचरणों की भक्ति तुम्हें यदि, बहुविधि भोग स्वयं होंगे॥29॥

कोई नर यदि सकल मोह अरु राग द्वेष होने पर भी।
पाता है सेवा प्रसाद वह परम गुरु पद-पंकज की॥
निर्विकल्प अरु सहज समय का सार जानता है निर्भ्रान्त।
परमश्रीरूपी सुन्दर कामिनि का होता है प्रिय कान्त॥30॥

दोहा

भावकर्म निरोध से द्रव्य कर्म निरोध।
द्रव्यकर्म निरोध से ही संसार निरोध॥31॥

(वीरछन्द)

करे शुभाशुभ कर्म मूढ़ जो वह है सम्यग्ज्ञान विहीन।
लेश न जाने वाञ्छा शिवपथ की वह जग में शरण विहीन॥32॥

कर्मज सुख त्यागे निष्कर्म सुखामृत सर में लीन रहे।
भव्य पुरुष वह अद्वितीय चैतन्य एक निज भाव लहे॥33॥

सकल विभाव असत् होने से उनकी चिन्ता हमें नहीं।
हम तो हृदय कमल में स्थित एक शुद्ध आतम का ही॥
"सर्व कर्म से मुक्त सदा हूँ" सतत् अनुभवन हैं करते।
क्योंकि मुक्ति का मार्ग नहीं है अन्य किसी भी कारण से॥34॥

संसारी जीवों में सांसारिक गुण ही हैं सदा रहें।
अरु सिद्धों में सिद्धिसिद्ध गुण ऐसा नय व्यवहार कहे॥
निश्चयनय से सिद्ध नहीं हैं और नहीं संसारी भी।
बुध पुरुषों का यह निर्णय है अनुभव करते विज्ञ सभी॥35॥

उभय नयों के सम्बन्धों का उल्लंघन नहिं करें सुजान।
परमेश्वर के पद पंकज में मत्त हुए जो भ्रमर समान॥
ऐसे महापुरुष ही सत्वर समयसार को पाते हैं।
पृथ्वी पर परमत कथनों से सत्पुरुषों को क्या फल है॥36॥

इसप्रकार जो कविकमलों के लिए सुशोभित सूर्य समान।
पञ्चेन्द्रिय विस्तार रहित है देहमात्र बस परिग्रह जान॥
ऐसे पद्मप्रभमलधारीदेव रचित इस टीका में।
जीव-अधिकार नाम का पहला श्रुत स्कन्ध समाप्त हुआ॥

2
अजीव अधिकार

गलने से परमाणु होता मिलने से स्कन्ध बने।
इस पदार्थ के बिना जगत में लोक यात्रा नहीं बने॥37॥

विविध भेद वाले पुद्गल के दृष्टि-गोचर होने पर।
हे भव्योत्तम ! तू इनके प्रति किञ्चित भी रतिभाव न कर॥
केवल चेतन चमत्कारमय निज आतम में तू रति कर।
इससे होगा परमश्रीरूपी कामिनी का वल्लभ वर॥38॥

छह प्रकार स्कन्धों या चौ विधि अणुओं से मुझको क्या?।
मैं तो अक्षय शुद्ध आत्मा को हूँ पुनः पुनः भाता॥39॥

(वीरछन्द)

जड़ पुद्गल की स्थिति पुद्गल में ही जो ऐसा जानें।
सिद्ध प्रभु वे निज चैतन्य स्वरूप मात्र में क्यों न रहें॥40॥

वर्ण आदि निज गुण समूह में सदा प्रकाशित परमाणु।
किन्तु नहीं उसमें किञ्चित भी कार्य सिद्धि मम मात्र अणु॥
इसप्रकार अपने अन्तर में जो जन यह निश्चित माने।
परम सौख्यपद का वाञ्छक वह भव्य निजातम को जाने॥41॥

पर-परणति से दूर शुद्ध पर्यायरूप ही होने से।
परमाणु को शब्दरूप स्कन्ध अवस्था नहिं होवे॥
जिसप्रकार जिन-परमेश्वर में कामदेव की बात नहीं।
उसप्रकार परमाणु नित्य में कभी शब्द की बातें नहीं॥42॥

इसप्रकार जिनवचनों द्वारा जानो तुम तत्त्वार्थ समूह।
जो अपने से भिन्न सदा त्यागो वह चित्त-अचित्त समूह॥
अन्तरङ्ग में निर्विकल्प होकर समाधि में लीन रहो।
पर से जो है भिन्न परम चित्-चमत्कार निज तत्त्व भजो॥43॥

पुद्गल द्रव्य अचेतन हैं अरु जीव सदा रहता चेतन।
यह विकल्प हो प्रथम भूमि में, करें न योगी जन निष्पन्न॥44॥

जड़ पुद्गल तन में न द्वेष, नहिं चेतन परमात्मा में राग।
ऐसी शुद्ध दशा यतियों की होती वे रहते वीतराग॥45॥

इस जग में गति में निमित्त जो, और स्थिति का कारण।
सबको जो अवकाश प्रदान करे उनका कर अवलोकन॥
धर्म अधर्म तथा नभ की अस्ति में शंका करो न लेश।
भव्य समूह सर्वदा निज शुद्धात्म तत्त्व में करो प्रवेश॥46॥

समय निमिष अरु घड़ी कला दिन रात भेद से यह उत्पन्न।
किन्तु एक निज निरुपम तत्त्व सिवाय न उससे कोई फल॥47॥

(वीरछन्द)

काल द्रव्य वर्तना निमित हैं कुम्भकार के चक्र समान।
काल बिना पञ्चास्तिकाय में वर्तन हो न सके यह मान॥48॥

हैं सिद्धान्त पद्धति द्वारा सिद्ध जीव अरु पुद्गल राशि।
धर्म अधर्म तथा नभ काल प्रतीतिगम्य सब द्रव्य समाज॥49॥

इसप्रकार भव्यों को कर्णामृतवत् है अरु अतिशय रम्य।
छह द्रव्यों का यह विवरण दैदीप्यमान विस्तृत मतिगम्य॥
जिन-मुनियों के मन को प्रमुदित करने वाला यह वर्णन।
भव्य जीव को है सदैव यह भव से मुक्ति का कारण॥50॥

प्रीतिपूर्वक पूर्वाचार्यों ने छह द्रव्य रत्न की माल।
भविजन कण्ठाभरण हेतु श्रुत-रत्नाकर से लिया निकाल॥51॥

जीवादिक षट् द्रव्यरूप यह रत्नाभरण सुशोभित है।
मैंने इसे मुमुक्षु कण्ठ की शोभा हेतु बनाया है॥
बुद्धिमान जन इस आभूषण से व्यवहार मार्ग जानें।
इसे जानकर भव्य जीव वे शुद्ध मार्ग को भी जानें॥52॥

जिस भव्योत्तम के मुख में इन पद की ललित पंक्ति शोभे।
क्या आश्चर्य कि उसके उर में समयसार सत्वर शोभे॥53॥

**इसप्रकार जो कविकमलों के लिए सुशोभित सूर्य समान।
पञ्चेन्द्रिय विस्तार रहित है देहमात्र बस परिग्रह जान॥
ऐसे पद्मप्रभमलधारीदेव रचित इस टीका में।
दूजा श्रुत स्कन्ध अजीव अधिकार नाम का पूर्ण हुआ॥**

3

शुद्धभाव अधिकार

(वीरछन्द)

सर्व तत्त्व में एक सार जो सकल क्षणिक भावों से पार।
जिसने दुर्जय काम नशा है पापवृक्ष को तीव्र कुठार॥
शुद्धबोध अवतरणरूप है सुखसागर की बाढ़ अहो।
क्लेशोदधि का यही किनारा समयसार जयवन्त रहो॥54॥

प्रीति-अप्रीति रहित शाश्वतपद अन्तर्मुखी प्रगट सुखरूप।
नभमंडलवत् अकृत, चेतन्यामृत से भरपूर स्वरूप॥
अहो विचारक पुरुष गम्य जो उसमें रुचि क्यों नहीं करे?।
पापरूप सांसारिक सुख की अभिलाषा क्यों मूढ़ करे॥55॥

नित्य शुद्ध जो चिदानन्दमय सम्पत्ति की खान महान।
जो अत्यंत अपद विपदा को उसका अनुभव करूँ सुजान॥56॥

निज से भिन्न तथा कर्मों के विषवृक्षों के फल को त्याग।
सहज चिदातम का भोक्ता जो क्या संदेह लहे निर्वाण॥57॥

किञ्चित् भी परिग्रह प्रपञ्च बिन, पञ्चाचार सहित विद्वान।
पञ्चमगति की प्राप्ति हेतु वे [1]सुमरें पञ्चमभाव महान॥58॥

d:\work\pravachan\niyamsa padh - 1.p65

ये समस्त शुभकर्म भोगियों के भोगों के मूल सदा।
अहो मुनीश्वर ! परम तत्त्व अभ्यास कुशल है चित् जिनका ॥
भव से मुक्ति प्राप्ति हेतु तुम उस समस्त शुभ को छोड़ो।
इसमें क्या क्षति? सार तत्त्वमय उभय समय का सार भजो ॥59॥

जिसे निरन्तर ज्ञान अखण्ड भावना की धारा बहती।
उसे न किञ्चित घोर विकल्पों की धारा भी छू पाती॥
अहो ! समाधि निर्विकल्प वह भव्य पुरुष है पा लेता।
पर परिणति से दूर अनघ अनुपम चिन्मात्र प्राप्त करता ॥60॥

(वीरछन्द)

भक्त अमर नत मुकुट रत्न से पूज्य चरण वे वीर जिनेश।
जन्म मृत्यु अरु जरा विनाशक देते अघ नाशक उपदेश॥
महावीर तीर्थाधिनाथ वच सन्त जिसे उर में धरते।
सत्यशील नौका द्वारा वे पार भवोदधि का पाते ॥61॥

दुष्ट पाप वन को कुठार अरु दुष्कर्मों को नष्ट किया।
पर-परिणति से दूर सदा रागोदधिपूर विनष्ट किया॥
विविध विकार हनन कर्ता जो सुखसागर का नीर अहो!
काम कलंक विनाशक [1]सार-समय मम रक्षा शीघ्र करो ॥62॥

तत्त्व निपुण पद्मप्रभ मुनि के हृदय कमल में सुस्थित है।
निर्विकार वह परमतत्त्व जो विविध विकल्प विनाशक है॥
भव भव के सुख-दुःख कल्पना मात्र रम्य जो लगें अहो।
उन सुख-दुःख से रहित कहें बुध परमतत्त्व जयवंत रहो ॥63॥

अहो भव्यता द्वारा प्रेरित होने वाले आत्मन् ! जो।
भव विमुक्त होना चाहो तो निज आतम को शीघ्र भजो॥
अनुपम ज्ञानाधीन सदा जो सहज शक्ति मणियों की खान।
सर्व तत्त्व में सारभूत जो निज परिणति सुखसागर मग्न ॥64॥

भव भोगों से विमुख यति हे लीन बुद्धि निज आतम में।
भवक्षयकारक पद भज ! अध्रुव चिन्ता से क्या लाभ तुम्हें ॥65॥

अच्युत और अनाकुल जन्म मृत्यु रोगादिक रहित सदा।
निर्मल सहज सुखामृत सार समय समरस से भजूँ सदा ॥66॥

आत्मज्ञानयुत सूत्रकार ने जिस निजात्म का किया कथन।
जिसे जान भवि मुक्ति लहें उत्तम सुख पाने करूँ भजन ॥67॥

आदि-अन्त से रहित अनघ निर्द्वन्द महा अक्षय बुधरूप।
जो भवि उसकी करें भावना सिद्धि लहें भव दुःख से दूर ॥68॥

जिसने ज्ञान ज्योति द्वारा अघ अंधकार का नाश किया।
आनन्दादि अतुल महिमा-धारी, जो रहे अमूर्त सदा॥
जो अपने में अविचलपन से रहे शील का मूल सदा।
भवभयहारी मुक्तिश्रीपति ईश्वर को वन्दन करता ॥69॥

बन्धन हो या मुक्त अवस्था विविध मूर्त द्रव्यों का [1]जाल।
शुद्ध जीव के निज स्वरूप से भिन्न सर्वदा [2]मूर्तिक-माल॥
शुद्ध वचन यह श्रीजिनपति का बुध पुरुषों को कहूँ सदा।
अहो भव्य ! त्रिभुवन प्रसिद्ध इस परम सत्य को जान सदा ॥70॥

जो सुबुद्धि या दुर्बुद्धि हों पहले से ही शुद्ध अहो!
किस नय से फिर भेद करूँ मैं, उन दोनों में तुम्हीं कहो ॥71॥

मिथ्यादृष्टि को सदैव ये शुद्ध-अशुद्ध विकल्प रहे।
ज्ञानी को तो सदा कार्य अरु कारणत्व भी शुद्ध रहें॥
परमागम का अतुल अर्थ जो सम्यग्दृष्टि स्वयं जाने।
सारासार विचारक [1]धी से, उनको हम वन्दन करते ॥72॥

शुद्ध तत्त्व के रसिक, तत्त्व का चिन्त्वन करके यही कहें।
मुक्त और संसार दशा में अन्तर नहीं शुद्धनय से ॥73॥

शुद्ध जीव से अन्य सभी पुद्गलमय भाव नहीं मेरे।
तत्त्वविज्ञ जो यह कहते वे अति अपूर्व सिद्धि पाते ॥74॥

यह सहज ज्ञान तथा सहज दृष्टि सदा जयवन्त है।
इस तरह सहज विशुद्ध चारित्र भी सदा जयवन्त है॥
जो पापपुञ्ज विहीन कर्दम पंक्ति से नित रहित है।
संस्थित सहज निज तत्त्व में वह चेतना जयवन्त है ॥75॥

इसप्रकार जो कविकमलों के लिए सुशोभित सूर्य समान।
पञ्चेन्द्रिय विस्तार रहित हैं देहमात्र बस परिग्रह जान॥
ऐसे पद्मप्रभमलधारीदेव रचित इस टीका में।
शुद्धभाव अधिकार तीसरा श्रुत स्कन्ध समाप्त हुआ॥

4

व्यवहार चारित्र अधिकार

(हरिगीतिका)

त्रसघात परिणतिरूप तम के नाश का जो हेतु है।
जो लोक के सम्पूर्ण जीवों के लिए सुखरूप है॥
एकेन्द्रियों के विविध वध से जो बहुत ही दूर है।
जिनधर्म नित जयवंत जो आनन्द सागर पूर है ॥76॥

स्पष्टता से जो पुरुष नित सत्य वाणी बोलता।
स्वर्ग की बहु देवियों को एक वह ही भोगता॥
इस लोक में भी सर्वदा वह सज्जनों से पूज्य हो।
सत्य से बढ़कर कहो सच कौन जग में व्रत अहो ॥77॥

(वीरछन्द)

उग्र अचौर्य जगत में रत्नों का समूह आकृष्ट करे।
परभव में सुर-कामिनी कारण क्रमशः लक्ष्मी-मुक्ति वरे ॥78॥

कामिनियों की तन-विभूति का कामी पुरुष यदि मन से।
करे स्मरण तो होगा क्या लाभ तुझे मम वचनों से॥
सहज स्वरूपी परम तत्त्व को क्यों त्यागे आश्चर्य अहो।
विपुल मोह का प्राप्त हुए हो किस कारण से तुम्हीं कहो ॥79॥

परिग्रहद्वय भवभय का कारण भव्य जीव तुम अभी तजो।
निरुपम सुख-ग्रह प्राप्ति हेतु निज में ही अविचल लीन रहो॥
यद्यपि जगत जनों को दुर्लभ सुखस्वरूप है यह थिरता।
किन्तु असत् पुरुषों को अचरज सत्पुरुषों को अचरज क्या ॥80॥

परम समिति को मुक्ति वधू की सखी जानते है जो जीव।
भवभयकारी कंचन कामिनी संग छोड़ते भव्य सदैव॥
सहज अपूर्व स्वरूप विलसता चमत्कार चैतन्य अभेद।
उसमें थिर होकर परिणमते सदा मुक्त रहते हैं वे ॥81॥

(हरिगीतिका)

जयवन्त हो यह समिति जो मुनि शील गुण का मूल है।
यह त्रस तथा स्थावरों के घात से अति दूर है॥
भव दवानल तापरूपी क्लेश करती शान्त है।
सुकृतरूपी धान्य को संतोष दायक मेघ है ॥82॥

विश्व में निश्चित यही इस जन्मरूपी उदधि में।
समिति विरहित कामरूपी रोगपीड़ित जन्मते॥
इसलिए हे मुनी ! अपने चित्तरूपी निलय में।
इस मुक्तिरूपी सुन्दरी के लिए भव्य निवास रख ॥83॥

(वीरछन्द)

निश्चयरूप समिति पाले तो जीव मुक्ति को प्राप्त करे।
किन्तु अरे रे ! समिति नाश से मुक्ति न हो भव में भटके ॥84॥

परमब्रह्म के अनुष्ठान में लीन बुद्धिशाली जन को।
बहिर्जल्प की बात कहें क्या? अन्तर्जल्प अहो बस हो ॥85॥[1]

(हरिगीतिका)

भक्त ने हस्ताग्र से भोजन दिया वह ग्रहण कर।
पूर्ण ज्ञान प्रकाशमय निज आत्मा का ध्यान कर॥
इस तरह सम्यक् तपों को तपे जो सत् तपस्वी।
मुक्तिमय वारांगना दैदीप्यमान लहे सही॥86॥

समितियों में समिति यह उत्तम मुनि को शोभती।
उन परम जिनमुनि संग में है क्षमा एवं मैत्री॥
हे भव्य ! तुम भी मन कमल में सदा यह धारण करो।
परमश्रीमय कामिनी के शीघ्र ही प्रिय कान्त हो॥87॥

जिनमार्ग में जो कुशल एवं आत्म चिन्तन लीन हैं।
ऐसे यती को यह समिति साम्राज्य-शिव का मूल है॥
जिनका हृदय घायल हुआ है काम अस्त्र समूह से।
उन मुनिगणों को तो समिति यह कभी भी दिखती नहीं॥88॥

(वीरछन्द)

मुक्ति कामिनी को जो प्रिय है सर्व समिति में समिति यही।
भवभय तम के नाश हेतु जो प्रभा समान [1]कलाधर की॥
हे मुनि ! जान प्रमोदभाव से, सखि-सत्-दीक्षा-कामिनि की।
प्राप्ति करे जिनकथित तपस्या-साध्य किसी शाश्वत फल की॥89॥

समिति संगति द्वारा मुनिगण मन अरु वचन अगोचर जो।
ऐसा कोई केवलसुख अमृतमय उत्तम फल पाते॥90॥

जो परमागम कथित अर्थ का चिन्तक अरु विजितेन्द्रिय है।
बाह्याभ्यंतर संग रहित, जिनपद ध्याता को गुप्ति कहें॥91॥

भव्यजीव भवभय उत्पादक सब वचनों का त्याग करें।
सहज शुद्ध विलसित चैतन्य चमत्कार का ध्यान करें॥
पाप तिमिर का पुञ्ज नाश कर अहो सहज जो महिमावन्त।
सौख्य और आनन्द खान है मुक्ति लहें अतिशय भगवन्त॥92॥

(दोहा)

तजकर काय विकार जो आत्म भावना भाय।
पुनः पुनः ध्यावे उसे जन्म सफल हो जाए॥93॥

(वीरछन्द)

जो प्रशस्त अप्रशस्त वचन-मन के समूह का करता त्याग।
आत्मनिष्ठ रहता अरु शुद्धाशुद्ध नय रहित हो निष्पाप॥
चिन्तामणि चिन्मात्र प्राप्त कर सदा अनन्त चतुष्टय युक्त।
पापारण्य-दहन सम योगितिलक होता है जीवनमुक्त॥94॥

अपरिस्पन्द स्वरूप मुझे यह परिस्पन्दमय देह अहो।
है व्यवहार मात्र से यह तन अतः तजूँ तन विकृति को॥95॥

(हरिगीतिका)

प्रख्यात तन संयुक्त, अम्बुजवत् प्रफुल्लित नेत्र हैं।
पुण्यका घर गोत्र है पण्डित कमल को सूर्य हैं॥
मुनिजन वनों को हैं वसन्तरु कर्मदल के शत्रु हैं।
सर्व हितकारी [1]सुसीमा मात-सुत जयवंत हैं॥96॥

कामगज को सिंह हैं जो पुण्य अम्बुज भानु हैं।
सर्वगुण साम्राज्य, चिन्तित वस्तुदायक [2]वृक्ष हैं॥
जो कर्म बीज विनाशकर्त्ता जिन-चरण सुरपति नमें।
संसारतरु त्यागी अहो [1]जिनराजश्री जयवंत हैं॥97॥

जीता जिन्होंने काम शर, विद्या प्रकाशक सर्व हैं।
सुखरूप परिणत, पाप नाशन के लिए यमरूप हैं॥
भवताप नाशक, श्रीपदों में भूपति जिनको नमें।
जो क्रोधजित विद्वान जिनको नमें वे जयवंत हैं॥98॥

सप्रसिद्ध जिनका मोक्ष अम्बुज पत्रवत् जो दीर्घ हैं।
पापकक्षा के विजेता काम सेना विजित हैं॥

यक्ष जिनके चरण में, विज्ञान तत्त्व सुदक्ष हैं।
[2]बुधजन-गुरू, निर्वाण दीक्षा उचारक जयवंत हैं॥99॥

[1]काम-नग को [2]वज्रधर जो [3]कान्तकाय प्रदेश हैं।
मुनिवर नमें जिनके चरण यमपाश नाशक शूर हैं॥
पापवन को अग्नि हैं, चहुँ ओर व्याप्त सुकीर्ति है।
जगत के जो नाथ, सुन्दर पद्मप्रभ जयवंत हैं॥100॥

वे सिद्धप्रभु व्यवहारनय से ज्ञान के घनपुञ्ज हैं।
त्रिभुवन शिखर की शिखा के चूड़ामणी घनरूप हैं॥
वे देव निश्चय से सहज चैतन्य चिंतामणि परम।
निज नित्य शुद्ध स्वरूप में ही वास करते हैं स्वयं॥101॥

(वीरछन्द)

सर्व दोष को नष्ट किया लोकाग्र शिखर पर जो थिर हैं।
देह मुक्त निरुपम निर्मल जो ज्ञान शक्ति से शोभित हैं॥
जो हैं अष्टकर्म की प्रकृति के समूह के नाशक जान।
नित्य शुद्ध हैं जो अनन्त हैं अव्याबाध त्रिलोक प्रधान॥
मुक्ति सुन्दरी के स्वामी हैं निर्मल गुण अनन्त की खान।
सिद्धि प्राप्ति के लिए अहो ! मैं सब सिद्धों को करूँ नमन॥102॥

निज स्वरूप में जो स्थित हैं और शुद्ध हैं सिद्ध महान।
वसु गुण सम्पति प्राप्त हुए वसुकर्म विनाशक उन्हें नमन॥103॥

(हरिगीतिका)

जो सकल इन्द्रियग्राम के आलम्बनों से मुक्त हैं।
जो हैं अनाकुल स्वहितरत [4]निर्वाण कारण हेतु हैं॥
शम दम दया मैत्री तथा यम आदि गुण जिसमें रहें।
श्री चन्द्रकीर्ति मुनीश का निरुपम हृदय मम वन्द्य है॥104॥

(दोहा)

रत्नत्रयमय शुद्ध जो भव्य कमल को सूर्य।
उपदेशक उवझाय को पुनः पुनः वन्दूँ॥105॥

(वीरछन्द)

संसारी के भव-सुख से जो विमुख, संग सम्बन्ध विहीन।
मुनिमन है वह वन्द्य हमें, हे मुनि ! मन करो निजात्म विलीन॥106॥

मुक्ति सुन्दरी का अनंग सुख-मूल शील कहते आचार्य।
उसका परम्परा कारण है कहा गया चारित व्यवहार॥107॥

इसप्रकार जो कविकमलों के लिए सुशोभित सूर्य समान।
पञ्चेन्द्रिय विस्तार रहित है देहमात्र बस परिग्रह जान॥
ऐसे पद्मप्रभमलधारीदेव रचित इस टीका में।
चौथा श्रुत स्कन्ध अहो ! व्यवहार चरित्र समाप्त हुआ॥

5

परमार्थ प्रतिक्रमण अधिकार

(हरिगीतिका)

ज्ञान अरु संयम गुणों के मूर्तिमन्त स्वरूप जो।
हैं कामगज कुम्भस्थलों को भेदने वाले अहो॥
शिष्यरूपी कमल विकसित करें सूर्य समान जो।
राजते हे सूरि माधवसेन ! तुमको नमन हो॥108॥

पञ्च रत्नों से अहो जिस भव्य ने है इस तरह।
सम्पूर्ण विषयों के ग्रहण की वासना का त्याग कर॥
निज द्रव्य-गुण-पर्याय में निज चित्त को एकाग्र कर।
निजभाव से जो भिन्न सकल विभाव तज हो मुक्ति वर॥109॥

(वीरछन्द)

इसप्रकार जब मुनिवर को होता अत्यंत भेद-विज्ञान।
मोह रहित हो जाता है तब स्वयं अहो उपयोग महान॥
शम-जलनिधि के महापूर से पाप मैल धो लेता है।
सचमुच कैसा समयसार का भेद अहो यह शोभित है॥110॥

(हरिगीतिका)

अतितीव्र मोहोत्पत्ति से पहले उपार्जित कर्म का।
प्रतिक्रमण कर इस ज्ञानमय नित आत्मा में वर्तता॥111॥

परमात्मा के ध्यान की सम्भावना से रहित जो।
वह भवदुःखी माना गया है सापराधी नियम से॥
जो युक्त एक अखण्ड चेतन भाव से है अनवरत।
जो निरपराधी जीव है वह दक्ष कर्म सन्यास में॥112॥

अद्वितीय परमानन्द अमृत से भरा भरपूर जो।
उस सहज ज्ञान स्वरूप निर्भर प्रगटरूप निजात्म को॥
आनन्द-भक्तिपूर्वक नहलाओ निज शम-नीर से।
बहुभाँति लौकिक वचनजालों से प्रयोजन क्या तुम्हें॥113॥

(वीरछन्द)

जन्म-मरणकारी सब दोष प्रसंगों से जो अन्-आचार।
उसे छोड़कर सहज अनुपम दर्शन-ज्ञान-वीर्य-सुखकार॥
आतम में आतम से स्थित होकर बाह्याचार विमुक्त।
शमरूपी सागर जलकण से होता है जो परम पवित्र॥
ऐसा परम पवित्र सनातन मैल क्लेश क्षय करता है।
क्षण भर में वह तीन लोक का उत्तम साक्षी होता है॥114॥

(हरिगीतिका)

जो विषय-सुख से विमुख हैं शुद्धात्म में अनुरक्त हैं।
तपलीन जिनका चित्त है [1]श्रुत-पुञ्ज में जो [2]मत्त है॥
गुण-मणिगणों से युक्त, सब संकल्प से जो मुक्त हैं।
वे मुक्तिरूपी सुन्दरी के क्यों नहीं वल्लभ बनें॥115॥

त्रय शल्य का परित्याग कर निःशल्य जो परमात्मा।
में लीन जो विद्वान नित शुद्धात्मा भायें सदा॥116॥

भवभ्रमण का कारण तथा कामाग्नि से जो दग्ध है।
कषाय दुःख से जो रंगा उस चित्त को तू छोड़ दे॥
जो कर्मवशता से अप्राप्त, स्वभाव में निश्चित सदा।
हे यती ! तू प्रबल भव-भय से विमल आनन्द भज॥117॥

मन-वचन-तन की विकृति को छोड़कर हे भव्य मुनि।
यह ज्ञान सम्यक् पुञ्जमय जो परम गुप्ति को सहज-
शुद्धात्मा की भावना से युक्त हो उत्कृष्ट भज।
मुनिराज का चारित्र निर्मल जो सहित हैं गुप्ति त्रय॥118॥

प्रत्यक्ष शिवमय सदा जो उस आत्मा में है नहीं।
ध्यानावली किञ्चित अहो यह शुद्धनय कहता यही॥
"ध्यानावली है आत्मा में" वचन यह व्यवहार का।
यह तत्त्व जो जिनवर कथित है इन्द्रजाल अहो महा॥119॥

ज्ञान-सम्यक् का विभूषण तत्त्व यह परमात्मा।
है सब विकल्पों से रहित सब ओर से यह आत्मा॥
इसमें नहीं नयपुञ्ज सम्बन्धी प्रपञ्च जरा अहो।
ध्यानावली फिर किस तरह उत्पन्न हो सकती कहो॥120॥

मोक्ष का जो कथनमात्र उपाय है व्यवहार से।
भव-सिन्धु डूबे जीव ने भव-भव सुना है आचरा॥
पर अरे रे ! खेद है जो सर्वदा इक ज्ञानमय।
उसको सुना है ही नहीं, अरु आचरा नहीं इस जीव ने॥121॥

तजकर समस्त विभाव या व्यवहार रत्नत्रय अहो।
निज आत्मा को जानने वाला पुरुष मतिमान जो॥
शुद्धात्मा में नियत ऐसे एक ही निजज्ञान का।
और फिर श्रद्धान का, आश्रय करे चारित्र का॥122॥

निज आत्मा के ध्यान बिन सब घोर भव कारण अहो।
ये ध्यान-ध्येयादिक सुतप भी कल्पना में रम्य है॥
यह जानकर धीमान जन इस एक ही परमात्म का।
पीयूष परमानन्द में ही डूबकर आश्रय करें॥123॥

जिस मनोमन्दिर में प्रकाशित शुक्लध्यान प्रदीप यह।
योगी वही, शुद्धात्मा उसको स्वयं प्रत्यक्ष है॥124॥

निर्यापकों की व्याख्या युत सदा सुनकर के कथन।
हो चित्त चारित्रधाम जिसका, संयमी को हो नमन॥125॥

जिनको सदा ही प्रतिक्रमण अणुमात्र नहिं अप्रतिक्रमण।
भूषित सकल संयम मुनि उन वीरनन्दि को नमन॥126॥

इसप्रकार जो कविकमलों के लिए सुशोभित सूर्य समान।
पञ्चेन्द्रिय विस्तार रहित है देहमात्र बस परिग्रह जान॥
ऐसे पद्मप्रभमलधारीदेव रचित इस टीका में।
पंचम श्रुत स्कन्ध नाम परमार्थ प्रतिक्रमण पूर्ण हुआ॥

6

निश्चय प्रत्याख्यान अधिकार

(वीरछन्द)

जो सुदृष्टि सब कर्म और नोकर्म पुञ्ज परित्याग करे।
सम्यग्ज्ञान मूर्ति उस ज्ञानी को नित प्रत्याख्यान वरे॥
पापसमूह विनाशक सत् चारित्र उसे अतिशय होता।
भव-भव दुख के नाश हेतु मैं नित्य उसे वन्दन करता॥127॥

मुनिजन उर पंकज का हंस सुशाश्वत केवलज्ञान स्वरूप।
सकल विमल दर्शन सुखमय जो जयवन्तो परमात्म स्वरूप॥128॥

निज आत्मिक गुण से समृद्ध निजातम पञ्चमभाव स्वरूप।
उसे एक को ही यह आत्मा निज में जानन देखनरूप॥
पञ्चम एक स्वभाव सहज को उसने छोड़ा कभी नहीं।
अन्यभाव पुद्गल विकार जो उन्हें ग्रहण ही करे नहीं॥129॥

अन्य द्रव्य के आग्रह से उत्पन्न सभी विग्रह तजकर।
शुद्ध पूर्ण ज्ञानात्मक सुख की प्राप्ति हेतु मेरा अन्तर॥
चिन्तामणि चैतन्यमात्र में लीन निरन्तर अचरज क्या।
अमृतभोजी सुर को अन्य अशन से कहो प्रयोजन क्या॥130॥

निरुपद्रव निर्द्वन्द निरूपम नित्य निजातम से उत्पन्न।
पर विभावना से नहिं हो जो निर्मल सुख अमृत कर पान॥
पुण्यभाव करनेवाले इस पुण्यभाव का त्याग करें।
चिंतामणि चिन्मात्र अतुल जिन अद्वितीय को प्राप्त करें॥131॥

गुरु-चरणों के अर्चन से उत्पन्न हुई निज महिमा का।
ज्ञाता हो विद्वान कहेगा कौन कि "यह पर है मेरा"॥132॥

बुद्धिमान द्वारा है निरुपम परमानन्द सहज चिद्रूप।
मात्र एक संग्राह्य यही जो महामुक्ति साम्राज्य सुमूल॥
इसलिए हे मित्र ! सुनो तुम मेरे इन वचनों का सार।
इस चैतन्य चमत्कार प्रति शीघ्र उग्र निज वृत्ति धार॥133॥

मन-वच-तन इन्द्रिय सम्बन्धी इच्छा को संयमित किया।
भवदधि में उत्पन्न मोह जलचर समूह को त्याग दिया॥
कनक कामिनी की वाञ्छा को अति विशुद्ध निज भावों से।
त्याग करूँ इन सब भावों को प्रबल ध्यानमय शक्ति से॥134॥

मेरे सहज सुदर्शन[1] में अरु शुद्ध ज्ञान में चारित्र में।
और शुभाशुभ कर्मद्वन्द के पावन प्रत्याख्यान समय॥
संवर में शुद्धोपयोग में एक यही परमात्मा ही।
मुक्ति प्राप्ति के लिए जगत में कोई अन्य पदार्थ नहीं॥135॥

कभी दिखाई देता निर्मल कभी अनिर्मल-निर्मलरूप।
कभी अनिर्मल दिखे इसलिए अज्ञानी को गहन स्वरूप॥
आत्मज्ञानरूपी दीपक वह पाप तिमिर को किया विनष्ट।
सत्पुरुषों के हृदय कमलरूपी घर में निश्चल संस्थित॥136॥

जन्म मृत्यु को प्राप्त करे यह जीव अकेला दुष्कृत से।
तीव्र मोह से विमुख हुआ यह जीव अकेला निज सुख से॥
कर्म शुभाशुभ का फल सुख दुःख जीव एक भोगे बहु बार।
किसी तरह गुरु से पाकर निज तत्त्व भोगता सौख्य अपार॥137॥

परमात्मा शाश्वत अहो मेरा कथञ्चित् एक है।
चैतन्य चिन्तामणि परम है सहज शाश्वत शुद्ध है॥
निज दिव्य अनहद ज्ञान दर्शन से सदा समृद्ध है।
तो फिर विविध बहिरंग भावों से मुझे क्या फल मिले?॥138॥

(हरिगीतिका)

निज आत्मा की भावना में लीन जिनकी बुद्धि है।
वे यति [1]यम में यत्न करते दुःखद [2]यम-नाशक अहो॥139॥

मुक्तिरूपी अंगना के लिये भ्रमर समान जो।
दुर्भावनारूपी तिमिर को शशि-प्रकाश समान जो॥
संयमी को नित्य संमत, मोक्ष सुख का मूल जो।
अत्यन्त भाता हूँ सदा मैं सखी समता को अहो॥140॥

(वीरछन्द)

निजसन्मुख सुखसागर ज्वार-हेतु जो चन्द्रप्रभा[1]सम है।
परम संयमी जन की दीक्षारमणी मन को प्रिय सखि है॥
मुनि समूह अथवा त्रिलोक का जो अतिशय आभूषण है।
योगिजनों को भी दुर्लभ जयवन्त सदा यह समता है॥141॥

जिनमत में उत्पन्न हुआ जयवन्त सदा यह प्रत्याख्यान।
परम संयमीजन को करता शिव सुख यह उत्कृष्ट सुजान॥
समतादेवी के कर्णों का यह सुन्दर है आभूषण।
हे मुनिवर ! तव दीक्षा-रमणी को अतिशय यौवन कारण॥142॥

मुनि को "[1]भावी भव-भावों से मैं हूँ जो निवृत्त सदा"।
इसप्रकार मलमुक्ति हेतु निज पूर्ण सौख्य निधि को भाना॥143॥

परमतत्त्व यह घोर भवोदधि की दैदीप्यमान नौका।
जिन कहते हैं अतः मोह को जीत तत्त्वतः मैं भाता॥144॥

भ्रान्तिनाश से जिनकी बुद्धि सहज परम चेतन में निष्ठ।
ऐसे शुद्ध चरित्रमूर्ति को होता प्रत्याख्यान विशिष्ट॥
जो योगी है अन्य-समय में उन्हें न होता प्रत्याख्यान।
उन संसारी जन को होता पुनःपुनः संसरण महान॥145॥

जग प्रसिद्ध है अतिशय शाश्वत जो आनन्दानन्द महान।
निर्मल गुणवाले सिद्धों में नियतरूप से रहता जान॥
तो भी तीक्ष्ण काम शस्त्रों से अरे अरे घायल विद्वान।
क्लेशित होकर कामेच्छा करते हैं क्यों जड़बुद्धि अजान॥146॥

दुष्ट पापरूपी वृक्षों की अटवी को जो अग्नि समान।
प्रगट शुद्ध सच्चरित करे यह संयमियों को प्रत्याख्यान॥
अतः शीघ्र निज मति में धारो तत्त्व नित्य हे भविशार्दूल।
जो कि सहज सुख देने वाला, मुनियों को चारित्र का मूल॥147॥

शुद्ध तत्त्व में निपुण बुद्धिवाले जीवों के अन्तर में।
सुस्थित है वह सहज तत्त्व जयवन्तो नितप्रति जीवन में॥
ऐसे सहज तेज ने जग के मोह तिमिर का किया विनाश।
वह निज रस विस्तार प्रकाशित शुद्धज्ञान का मात्र प्रकाश॥148॥

सहज तत्त्व जो सदा अखण्डित शाश्वत सकल दोष से दूर।
नौका तुल्य उन्हें जो डूबे भवसागर में जीव समूह॥
संकटपुञ्जरूप दावानल शान्ति हेतु जो नीर समान।
अतिप्रमोद से सतत नमूँ उस सहज तत्त्व को जो गुणखान॥149॥

जिनप्रभु के मुखरूप कमल से जो सुविदित निज में है स्थित।
मुनिवर के मनगृह में सुन्दर रत्नदीपवत् है भासित॥
जग में दर्शनमोहजयी योगीजन से जो वन्द्य सदा।
मैं अत्यन्त नमस्कार उस सहज तत्त्व को करूँ सदा॥150॥

पाप राशि को नष्ट किया है पुण्य समूह हना जिसने।
प्रबल ज्ञान का महल अहो कामादिक नष्ट किये जिसने॥
तत्त्वज्ञों से सदा वन्द्य जो कार्यकलाप विनाश स्वरूप।
मोह विनाशक, पुष्ट गुणों का धाम उसे मैं सदा नमूँ॥151॥

इसप्रकार जो कविकमलों के लिए सुशोभित सूर्य समान।
पञ्चेन्द्रिय विस्तार रहित है देहमात्र बस परिग्रह जान॥
ऐसे पद्मप्रभमलधारीदेव रचित इस टीका में।
निश्चय प्रत्याख्यान नाम छठवाँ स्कन्ध समाप्त हुआ॥

7

परम आलोचना अधिकार

(वीरछन्द)

जो भवमूल शुभाशुभ उनका बार-बार कर आलोचन।
निरुपाधिक गुणमय शुद्धातम का आतम से अवलम्बन॥
द्रव्यकर्म की सभी प्रकृतियों का अत्यन्त विनाश करूँ।
सहज विलसती ज्ञानलक्ष्मी को मैं सत्वर प्राप्त करूँ॥152॥

मुक्ति अंगना-संगम हेतु आलोचन भेदों को जान।
भव्य निजातम में थिर होते स्वात्मनिष्ठ को करूँ प्रणाम॥153॥

जो निज को निज से निज में अविचल निवासवाला देखे।
वह अनंग सुखमय शिवरमणी के विलास को त्वरित वरे॥
खेचर भूचर और सुरेन्द्रों संयमियों से है वह वन्द्य।
सर्ववन्द्य उस गुणनिधि को गुण प्राप्ति हेतु मैं करूँ नमन॥154॥

जिसने ज्ञान ज्योति के द्वारा पाप तिमिरघन किया विनाश।
परम [1]यमी के चित्तकमल में वह [2]पुराण आत्मा स्पष्ट॥
संसारी जीवों के वचन तथा मन से है वह अतिक्रान्त।
परम निकट इस परम पुरुष में विधि-निषेध की कैसी भ्रान्ति?॥155॥

जो इन्द्रिय-समूह से होने वाले कोलाहल से मुक्त।
दूर रहे नय-अनय पुञ्ज से किन्तु योगियों द्वारा गम्य॥
जो उत्कृष्ट, सदा शिवमय है, अज्ञानी जन को अति दूर।
है जयवन्त अनघ चिन्मय यह सहज तत्त्व निज रस भरपूर॥156॥

निज सुखरूप सुधासागर में डूबे निज शुद्धातम को।
जान भव्य जन परम गुरू से प्राप्त करें शाश्वत सुख को॥
अतः अभेद दृष्टि की सिद्धि से उत्पन्न सौख्य से शुद्ध।
भाऊँ सदा अपूर्व रीति से सहज तत्त्व कोई अद्भुत॥157॥

सर्वसंग से रहित, मोहबिन, अनघ और परभाव विमुक्त।
ऐसे इस परमात्म तत्त्व को सम्यक् भाता हूँ मैं नित्य॥
मुक्तिरूप स्त्री के द्वारा जो अनंग सुख हो उत्पन्न।
उसे प्राप्त करने हेतु परमात्म तत्त्व को करूँ नमन॥158॥

निज से भिन्न विभाव त्याग चिन्मात्र भाव को भाता हूँ।
भवदधि तरने हेतु अभेदरूप शिवपथ को नमन करूँ॥159॥

जो कर्मों से दूर अतः सहजावस्था पूर्वक है व्यक्त।
आत्मनिष्ठ रहने वाले मुनियों को शिवपथ करे प्रशस्त॥
एकाकार तथा निज रस विस्तार पूर है परम पवित्र।
शुद्ध शुद्ध जो एक सनातन पञ्चम भाव सदा जयवन्त॥160॥

है अनादि से जन समूह को तीव्र मोह से मत्त सदा।
ज्ञान-ज्योति यह कामाधीन निजात्मकार्य में मूढ़ सदा॥
ज्ञान-ज्योति वह मोह विलय से शुद्धभाव को प्राप्त करे।
दिग्मंडल को निर्मल करती, सहज अवस्था प्रगट करे॥161॥

जीव निरन्तर द्रव्य कर्म नोकर्म पुञ्ज से रहता भिन्न।
अन्तरंग में शुद्ध और शम-दम गुण कमलों को है हंस॥
अनुपम आनन्द आदि गुणात्मक चेतन चमत्कार मूरत।
आतम ग्रहे न परद्रव्यों को क्योंकि हुआ है मोह विलय॥162॥

अन्तरंग अक्षय गुणमणियों का समूह जो शुद्धातम।
निर्मल शुद्धभाव अमृत से पाप पंक को करे वमन॥
पञ्चेन्द्रिय समूह के कोलाहल का जिसने किया विनाश।
भासमान वह शुद्धातम है ज्ञानज्योति से कर तम नाश॥163॥

यह जग सहज घोर रौद्रादिक दुख से नित परितप्त रहे।
मुनिवर समता के प्रसाद से शम-अमृत हिम राशि ग्रहें॥164॥

प्राप्त करें न कदापि विभाव समूह हुए जो जीव विमुक्त।
क्योंकि विभाव हेतु जो सुकृत या दुष्कृत को किया विनष्ट॥
इसीलिए अब मैं तज सुकृत अरु दुष्कृत कर्मों का जाल।
मुक्तिमार्ग में गमन करूँ मैं छोडूँ उभय कर्म जंजाल॥165॥

पुद्गल स्कन्धों से अस्थिर भव मूर्ति इस तन को त्याग।
सदा शुद्ध जो ज्ञानशरीरी आतम का करता आश्रय॥166॥

भाव शुभाशुभ से विहीन शुद्धातम की भावना करूँ।
मम अनादि संसार-रोग की उत्तम औषधि यही लहूँ॥167॥

विविध भेदमय कर्म शुभाशुभ पञ्च परावर्तन का मूल।
मुक्ति प्रदायक, जन्म-मरण से रहित तत्त्व को नमन करूँ॥168॥

इसप्रकार यह आत्म ज्योति जो आदि अन्त से रहित अहो।
सुमधुर अथवा सत्य वचन का विषय कदापि नहीं कहो॥
किन्तु उसे पा गुरु-वचनों से शुद्ध दृष्टिवाला होता।
परमश्रीरूपी कामिनि का वल्लभ वह निश्चित होता॥169॥

रागरूप अति गहन तिमिर का सहज तेज से किया विनाश।
शुद्ध शुद्ध है और सदा जो मुनिवर-मन में करे निवास॥
दुर्लभ विषयासक्त जीव को सुख समुद्र जो परम अहो।
निद्रानाशक शुद्ध ज्ञानमय परम तत्त्व जयवन्त रहो॥170॥

(हरिगीतिका)

जिनवर कथित आलोचना के भेद को जो जानते।
वे भव्यजन सब ओर से परभाव को परित्यागते॥
इन सभी को अवलोकते निजरूप को भी जानते।
वे परमश्रीमय कामिनी के कांतिमय वल्लभ बनें॥171॥

जो संयमीजन को सदा शिवमार्ग फल देती अहो।
शुद्धात्मा में नियत चर्या के सदा अनुरूप जो॥
ऐसी निरन्तर शुद्धनयमय जो अहो आलोचना।
मुझ संयमी को वास्तव में कामधेनु रूप हो॥172॥

त्रय लोक जाननहार ऐसे निर्विकल्प निजात्म को।
उस तत्त्व को मोक्षार्थि जन हैं भली भाँति जानते॥
शुद्ध शीलाचरण करते हैं उसी की सिद्धि को।
प्राप्त करके सिद्धिरूपी कामिनी के पति बनें॥173॥

(वीरछन्द)

तत्त्व मग्न जिनमुनि के हृदय कमल की केसर में सानन्द।
सदा विराजित है, जो बाधा रहित, विशुद्ध सदा चिद्घन॥
कामदेव शर सेना को जो दावानल-सम भस्म करे।
शुद्धज्ञान दीपक द्वारा मुनि-मन-गृह-तम का नाश करे॥
भवसागर से पार गमन को जो है सुन्दर नौका-सम।
साधुजनों से वन्दनीय उस शुद्धतत्त्व को करूँ नमन॥174॥

बुद्धिमान हैं फिर भी 'अभिनव पाप करो' दें यह उपदेश।
क्या वे तपसी है? हम पूछें, अरे! हमें है अतिशय खेद॥
उर में विलसित शुद्धज्ञानमय सर्वोतम इस पद को जान।
पुनः सरागी होते हैं वे भव भव में दुःख सहें महान॥175॥

सदा अनाकुल सहज तत्त्व वह तत्त्वों में जयवन्त रहे।
सुलभ निरन्तर, सदा प्रकाशित, ज्ञानी को समता घर है॥
परम कला युत विकसित अरु निजगुण से सदा प्रफुल्लित है।
निज महिमा में लीन निरन्तर, सहज अवस्था प्रकटित है॥176॥

सप्त तत्त्व में सहज सुनिर्मल परम तत्त्व अन् आवृत है।
सकल विमल ज्ञानालय शिवमय अति ही स्पष्ट सुशास्वत है॥
मुनिजन को भी दूर सदा है जो मन से अरु वाणी से।
बाह्य प्रपञ्च पराङ्मुख है जो उसे सदा हम नमन करें॥177॥

शान्त-रसामृत सागर को नित उदयमान जो चन्द्र समान।
ज्ञान-सूर्य से मोह तिमिर के नाशक जयवन्तो भगवान॥178॥

जिसने दारुण राग नष्ट कर जन्म-जरा-मृत्यु जीते।
पाप तिमिर को रवि-सम हैं जो निजपद थित जयवन्त रहे॥179॥

इसप्रकार जो कविकमलों के लिए सुशोभित सूर्य समान।
पञ्चेन्द्रिय विस्तार रहित है देहमात्र बस परिग्रह जान॥
ऐसे पद्मप्रभमलधारीदेव रचित इस टीका में।
सप्तम श्रुत स्कन्ध नाम परमालोचना समाप्त हुआ॥

8

निश्चय प्रायश्चित् अधिकार

(वीरछन्द)

मुनियों को जो रहे निरन्तर निज चिन्तन प्रायश्चित है।
निज सुख रतिमय प्रायश्चित से पाप क्षपण कर मुक्ति लहें॥
उन्हें अन्य कोई चिन्ता हो तो विमूढ़ कामार्त अहो।
पुनः पाप उत्पन्न करें - इसमें न हमें कुछ अचरज हो॥180॥

काम क्रोध क्षय की जो है मुनियों को सम्भावना अहो।
अथवा अपने ज्ञानभाव की वर्ते सम्भावना अहो॥
यही उग्र प्रायश्चित है - यह कहते हैं मुनिनाथ अहो।
आत्मप्रवादपूर्व में जाना सन्तों ने है यही अहो ॥181॥

क्रोध कषाय क्षमा से जीतो मान कषाय मार्दव से।
माया को आर्जव से जीतो और लोभ को शुचिता से॥182॥

अनशनादि तपरूप शुद्ध चैतन्यरूप को जो जानें।
सहजज्ञान की कलागम्य जो तत्त्व पाप क्षय हेतु उन्हें ॥184॥

जो स्वद्रव्य का धर्मध्यान अरु शुक्लध्यान मय चिन्तन है।
कर्मजन्य तम नाश हेतु जो सम्यग्ज्ञान तेज-सम है॥
निर्विकार निज महिमा में ही रहता है जो लीन सदा।
ऐसा प्रायश्चित वास्तव में उत्तम पुरुषों को होता॥185॥

आत्मज्ञान से आत्मलब्धि होती है क्रमशः [1]यमियों को।
ज्ञान ज्योति से इन्द्रियदल के अन्धकार का नाशक जो॥
कर्मवनों की दावानल की शिखाजाल शम करने को।
शमजलमय धारा तेजी से सततरूप बरसाती जो॥186॥

संयम-रत्नमाल गूँथी अध्यात्म शास्त्र के सागर से।
मुक्ति-वधू के वल्लभ तत्त्वज्ञों का कण्ठाभूषण है॥187॥

(वीरछन्द)

मुनिजन चित्त-कमल का वासी, मुक्ति कामिनी रति सुख मूल।
नित्य नमूँ परमात्मतत्त्व को भवतरु किया विनष्ट समूल॥188॥

कर्मों की अटवी अनादि भव परम्परा से पुष्ट महान।
उसे जलाने हेतु अग्नि की ज्वाला-सम तप शम सुखखान॥
मुक्ति-वधू को भेंट, चिदानन्द अमृत रस से है भरपूर।
यही कर्मनाशक प्रायश्चित सन्त कहें नहिं कोई और॥189॥

जिसने नित्य ज्योति के द्वारा तिमिर पुञ्ज का किया विनाश।
आदि-अन्त बिन, परम कलामय आनन्दमूर्ति [3]ज्ञानप्रकाश॥
शुद्धातम में अविचल मन से उसे निरन्तर जो ध्याते।
निकटभव्य चारित्र पुञ्ज वे त्वरित मुक्ति-रमणी वरते॥190॥

शुभ अरु अशुभ वचन रचना का त्याग करें जो भव्य महान।
सम्यक् तथा प्रगट भाते हैं सहज तत्त्व परमात्म महान॥
उन ज्ञानात्मक परम यमी को मुक्ति-वधू सुख कारण जो।
ऐसा शुद्ध नियम होता है उन्हें नियम से शीघ्र अहो॥191॥

निर्विकार अद्वैत निरन्तर जो अखण्ड चैतन्य स्वरूप।
जिसमें किञ्चित् प्रगट न होते हैं समस्त नय भेद समूह॥
भेदवाद सब दूर हुए जिससे मैं वह परमात्म स्वरूप।
नमन करूँ स्तवन करूँ सम्यक् प्रकार से भाता हूँ॥192॥

यह ध्याता यह ध्यान ध्येय है और यही इसका फल है।
इन विकल्प जालों से जो है मुक्त उसे मैं नमन करूँ॥193॥

भेदवाद उत्पन्न कदाचित् हो जिस योग परायण में।
कौन जानता उसकी मुक्ति है या नहीं अर्हत् मत में॥194॥

रहें निरन्तर निज आतम में लीन सदा संयतजन जो।
काया से उत्पन्न हुए अति प्रबल कर्म को त्यागें वो॥
अतः विरत वे वचन जल्प से निवृत रहें विकल्पों से।
आत्मध्यान के कारण कार्योत्सर्ग सदा है निश्चय से॥195॥

परम तत्त्व जयवन्त सहज जो सहज तेज में सदा निमग्न।
सहज प्रकाश स्वरूप तत्त्व वह जिसने किया मोह तम भग्न॥
वृथा हुए जो भव भव के परिताप सदा है उनसे दूर।
मुक्त कल्पनाओं से है जो परम दृष्टि से है परिपूर्ण॥196॥

तुच्छ और जो मात्र कल्पना में ही लगता है रमणीय।
भव-भव का सुख मैं सब सम्यक् तजता आत्मशक्ति से नित्य॥
प्रगट हुआ है निज विलास जिसका जो परम सौख्य वाला।
चेतन-चमत्कारमय उसका सदा अनुभवन मैं करता॥197॥

मम उर में स्फुरित अहो निज आत्म गुणों का यह वैभव।
मैंने नहिं जाना अनादि से जो समाधि का परम विषय॥

रे ! त्रिभुवन के वैभव के क्षयकारक ये दुष्कर्म महान।
इनकी ही प्रभुत्व शक्ति से हुआ जगत में मैं हैरान॥198॥

भवोत्पन्न विषतरु के फल सब ही हैं दुख के कारण जान।
चेतन में उत्पन्न विशुद्ध सौख्य का अनुभव करूँ महान॥199॥

इसप्रकार जो कविकमलों के लिए सुशोभित सूर्य समान।
पञ्चेन्द्रिय विस्तार रहित है देहमात्र बस परिग्रह जान॥
ऐसे पद्मप्रभमलधारीदेव रचित इस टीका में।
अहो शुद्ध निश्चय प्रायश्चित श्रुत स्कन्ध समाप्त हुआ॥

9

परम समाधि अधिकार

(वीरछन्द)

उत्तम आत्माओं के उर में प्रगटरूप यह कोई परम।
अकथनीय इस परम समाधि द्वारा अनुभव करें न हम॥
जब तक समता की अनुगामी अनुपम आत्म सम्पदा का।
तब तक हम जैसों का है जो [2]विषय न अनुभव में आता॥200॥

निर्विकल्प चैतन्य समाधि में सदैव जो है रहता।
द्वैत-अद्वैत विकल्प रहित आतम को मैं वन्दन करता॥201॥

गिरि की गहन गुफा में अथवा वन के शून्य प्रदेशों में।
रहने से, इन्द्रिय निरोध से, अथवा ध्यान लगाने में॥
तीर्थवास-जप-पठन-होम भी ब्रह्म सिद्धि के नहीं उपाय।
इसीलिए गुरुओं द्वारा तुम खोजो इससे भिन्न उपाय॥

अनशनादि तप से नहिं कुछ भी, समताहीन यति को फल।
अतः मुनि ! निज तत्त्व निराकुल समता कुल मन्दिर को भज॥202॥

इसप्रकार भव भव उत्पादक सब सावद्य राशि को त्याग।
मन-वच-तन की विकृति को भी प्राप्त करावे सतत विनाश॥
अन्तरंग शुद्धि से परम कलामय निज आतम को जान।
स्थिर शममय शुद्ध शील को प्राप्त करे यह जीव महान॥203॥

त्रस जीवों के घात और स्थावर के भी वध से मुक्त।
परम संयमी जिन मुनियों का रहे निरन्तर ऐसा चित्त॥
चरम अवस्था प्राप्त चित्त का स्तवन करूँ जो अति निर्मल।
कर्म मुक्ति के लिए नमूँ, सम्यक् भाता, करता वन्दन॥204॥

कोई अद्वैत मार्ग में स्थित द्वैत मार्ग में कोई रमें।
द्वैत-अद्वैत विमुक्त मार्ग में अहो निरन्तर हम वर्तें॥205॥

इच्छा करते है अद्वैत की कोई द्वैत को ही चाहें।
द्वैत-अद्वैत विमुक्त निजातम को मैं नित प्रति करूँ नमन॥206॥

अहो अजन्मा अविनाशी निज आतम को आतम द्वारा।
आतम में स्थित रहकर मैं सुख वाञ्छक पुनि-पुनि भाता॥207॥

भव उत्पादक भेद कथन से बस होओ अब बस हो रे !
अहो अखण्डानन्द आत्मा नयसमूह का अविषय है॥
इसीलिए यह आतम द्वैत-अद्वैत विकल्पों से है दूर।
अल्पकाल में भवभय क्षय के लिए उसे मैं नमन करूँ॥208॥

सुख दुख होते हैं सुकृत दुष्कृत समूह से भव-भव में।
और शुभाशुभ परिणति का है लेशमात्र नहिं चेतन में॥
एकरूप चेतन को किञ्चित् भव का परिचय हुआ नहीं।
इसप्रकार भवगुणसमूह से भिन्न आत्म को नमन करूँ॥209॥

सहज तेज का पुञ्ज प्रगट कर हर लेता है अघतम को।
पाप सैन्य की उच्च पताका को भी हर लेता है जो॥

यह चैतन्य चमत्कारमय सदा शुद्ध है शुद्ध अहो।
त्रिभुवन में यह परम तत्त्व जयवन्त रहो सर्वदा अहो ! ॥210॥

अस्त किया संसार तथा गणधर के उर में जो स्थित।
भवकारण से मुक्त हुआ जो शुद्धरूप एकान्त प्रगट॥
निज महिमा में लीन तथापि समदृष्टि को अनुभव गम्य।
अहो! अनघ यह आत्म तत्त्व है परिणति में नितप्रति जयवन्त॥211॥

"परम मुनि को तप संयम में और नियम सत् चारित में।
सदा आत्मा ऊर्ध्व रहे" यदि शुद्धदृष्टि ऐसा समझे॥
तो उस भवभयहारी भावी तीर्थनाथ को निश्चित ही।
यह साक्षात् सहज समता है राग नाश के कारण ही॥212॥

जिसने ज्ञान-ज्योति के द्वारा पाप तिमिर का किया विनाश।
परमानन्दामृत का पूर निकट ही करता जहाँ निवास॥
उसमें विकृति करने की नहिं राग द्वेष में है सामर्थ्य।
समरसमय उस आत्म तत्त्व में क्या विधि है अरु कहाँ निषेध॥213॥

जो मुनि आर्त रौद्र इन दोनों ध्यानों को नित प्रति छोड़ें।
जिनशासन में सिद्ध उन्हें अणुव्रतमय सामायिक व्रत है॥214॥

भव-भव के जो मूलभूत सब पुण्य-पाप का करके त्याग।
सहज शुद्ध चैतन्यरूप [1]आनन्द-नित्य को करता प्राप्त॥
वह सुदृष्टि जीवास्तिकाय में नित प्रति विचरण करता है।
फिर वह त्रिभुवनजन से पूजित - ऐसा जिनवर होता है॥215॥

स्वतः सिद्ध यह ज्ञान शुभाशुभवन दहने को अग्नि समान।
महामोहतम नाश हेतु जो प्रबल तेजमय सूर्य समान॥
यह विमुक्ति का मूल महा निश्छल आनन्द सुखदायक है।
नित्य पूजता हूँ मैं इसको भव विध्वंस हेतु [3]पटु है॥216॥

अघ समूह के वश यह चेतन [1]संसृति-रमणी पति होकर।
कामजनित सुख हेतु जी रहा आकुल मतिवाला होकर॥
और कभी भव्यत्व भाव से शीघ्र मुक्ति सुख करता प्राप्त।
उसे छोड़कर चलित न हो वह सिद्ध कभी उसके पश्चात्॥217॥

संसृतिरूपी रमणी से उत्पन्न हुए सुख दुःख समूह।
नोकषाय नवरूप सभी में प्रमुदित होकर के छोड़ूँ॥
महामोह से अन्ध जीव को नोकषाय ये सदा सुलभ।
लीन निरन्तर जो समाधि में [1]आनन्दित-मन को दुर्लभ॥218॥

निष्पाप परम सुखरूप तत्त्व के आश्रित जो अन्तिम द्वय ध्यान।
बुद्धि परिणमित उनमें जिसकी रत्नत्रययुत जीव महान॥
प्राप्त करे वह महत् तत्त्व को रहित सदा जो दुःख समूह।
भेदों का जिसमें अभाव है अतः वचन मनपथ से दूर॥219॥

इसप्रकार जो कविकमलों के लिए सुशोभित सूर्य समान।
पञ्चेन्द्रिय विस्तार रहित है देहमात्र बस परिग्रह जान॥
ऐसे पद्मप्रभमलधारीदेव रचित इस टीका में।
परम समाध्यधिकार नाम नवमा स्कन्ध समाप्त हुआ॥

10

परम भक्ति अधिकार

(वीरछन्द)

भवभयहारी सम्यग्दर्शन शुद्धज्ञान अरु चारित्र की।
करें निरन्तर अतुलनीय जो भवछेदक अनुपम भक्ति॥
कामादिक सब दुष्ट पापघन से विमुक्त उसका चित हो।
श्रावक हो अथवा संयमयुत जीव भक्त है भक्त अहो! ॥220॥

कर्म विनाशक सिद्धिवधूपति गुण संपति को प्राप्त अहो!
उन सिद्धों को वन्दन करता मैं कल्याण निकेतन जो॥221॥

इसप्रकार निर्वाण भक्ति व्यवहार कथन जिनराज कहे।
निश्चय से निर्वाण भक्ति रत्नत्रय भक्ति को कहते॥222॥

आचार्यों ने सिद्ध दशा को कहा सभी दोषों से दूर।
फल शुद्धोपयोग का केवलज्ञान आदि गुण से भरपूर॥223॥

जो लोकाग्र वास करते, भव क्लेशोदधि से होकर पार।
मुक्ति वधू-स्तन आलिंगन से जो उत्पन्न सुखामृत खान॥
मुक्ति सम्पदा के गुण मंडित जो शुद्धात्म भावनोत्पन्न।
पाप-वनों को पावक जो सिद्धों को प्रतिदिन करूँ नमन॥224॥

जो लोकाग्र निवासी, गुणगुरु [1]ज्ञेयोदधि-पारंगत हैं।
मुक्ति-वधू मुखकमल सूर्य हैं निजाधीन सुख सागर हैं॥
अष्ट गुणों को प्राप्त, भवान्तक, अष्ट कर्म के नाशक हैं।
पाप-वनों को पावक शाश्वत सिद्धों की हम शरण गहें॥225॥

जो जनगण या सुरगण द्वारा हैं परोक्ष भक्ति के योग्य।
परम श्रेष्ठ हैं अतिप्रसिद्ध हैं शिवमय सदा सुसिद्ध मनोज्ञ॥
सिद्धिरूप रमणी का अति रमणीय मुखकमल जो सुन्दर।
सिद्धप्रभू उसका मकरन्द सुधारस पीते हुए भ्रमर॥226॥

निश्चल महाशुद्ध रत्नत्रययुक्त नित्य शुद्धातम में।
मुक्ति हेतु दृग-ज्ञान-चरित्रमय निरुपम सहज निजातम में॥
वास्तव में सम्यक् प्रकार से स्थापित करके आतम को।
चेतन चमत्कार भक्ति से प्राप्त [2]निरतिशय निज घर को॥
निजानन्द से शोभित जिसमें से आपद सब दूर हुईं।
यह आतम निज निलय निवासी मुक्ति वधू का हो स्वामी॥227॥

(दोहा)

आतम को निज आत्म से जो जोड़े यह आत्म।
योग भक्तिवाला वही निश्चय मुनिवर आत्म॥228॥

योगभक्ति हो श्रेष्ठ जब होवे भेद विलीन।
आत्मलब्धिमय मुक्ति को योगी लहें प्रवीण॥229॥

(हरिगितिका)

मुनिनाथ के मुखकमल से जग में प्रगट है जो अहो।
वह नाश करता भव्य जन के भव भ्रमण के पुञ्ज को॥
निज दुराग्रह को छोड़कर उस तत्त्व में निजभाव को।
जो जोड़ते साक्षात् जिनयोगी उन्हें ही योग है॥230॥

(वीरछन्द)

जो त्रिलोक की पुण्य राशि हैं और गुणों से हैं भूषित।
देवेन्द्रों की मुकुट प्रभा से भासित मणियों से पूजित॥
जिनके सन्मुख सुरपति और शची करते हैं नर्तन जान।
कीर्ति तथा श्रीपति ऋषभादिक जिन का स्तवन करूँ महा॥231॥

आदिनाथ से महावीर तक तीर्थंकर जिनराज हुए।
योगभक्ति कर इसी विधि से मुक्ति-वधू सुख प्राप्त हुए॥232॥

अपुनर्भव सुख सिद्धि हेतु मैं शुद्धयोग की भक्ति करूँ।
भवभय से हे जीव सभी यह उत्तम भक्ति नित्य करो॥233॥

श्री गुरु की सन्निधि में निर्मल सुखकर धर्म प्राप्त करके।
ज्ञानभाव से मोहभाव की महिमा को विनष्ट करके॥
राग-द्वेष परिणति को तजकर शुद्ध ध्यान से शान्त हुआ।
मन थिर है आनन्द तत्त्व में परमब्रह्म में लीन हुआ॥234॥

नष्ट हुई इन्द्रिय लोलुपता, तत्त्व लोलुपी जिनका चित्त।
सुन्दर आनन्द झरता उत्तम तत्त्व उन्हें होता है व्यक्त॥235॥

अति अपूर्व निज आत्म-जनित उत्तम भावों से जो उत्पन्न।
सुख के लिये यत्न करते यति वे ही होते जीवन मुक्त॥236॥

जो परमात्म तत्त्व रागादिक द्वन्दों में उपलब्ध नहीं।
पुनः पुनः मैं करूँ भावना केवल एक अनघ उसकी॥

मात्र मुक्ति की मुझे कामना भव सुख के प्रति मैं निष्काम।
मुझे लोक के अन्य पदार्थ समूहों से फिर है क्या काम॥237॥

(वीरछन्द)

इसप्रकार जो कविकमलों के लिए सुशोभित सूर्य समान।
पञ्चेन्द्रिय विस्तार रहित है देहमात्र बस परिग्रह जान॥
ऐसे पद्मप्रभमलधारीदेव रचित इस टीका में।
परमभक्ति अधिकार नाम दसवाँ श्रुतस्कन्ध समाप्त हुआ॥

11

निश्चय परम आवश्यक अधिकार

(वीरछन्द)

जो उत्पन्न स्ववशता से आवश्यक-कर्मस्वरूप अहो।
सत्-चित्-आनन्दमूर्ति आत्म में निश्चित अतिशय धर्म अहो॥
कर्मक्षय में कुशल यही यह शिवपुर का है पन्थ कहा।
अद्भुत निर्विकल्प सुख को मैं शीघ्र इसी से हूँ पाता॥238॥

कोई योगी लीन स्वहित में शुद्ध जीवघन के अतिरिक्त।
पर-पदार्थ के वश नहिं होता यह सुस्थिति ही [1]अवश निरुक्ति॥
निज में सदा लीन रहकर ही [2]दुरित तिमिर का नाश किया।
प्रगट ज्योति से सहज दशा है अतः उसे बिनमूर्तपना॥239॥

तीन लोकमय महा निलय में जो करता है वास सदा।
महातिमिरवत् मुनि को कोई तीव्र मोह का उदय कदा॥
पहले तीव्र विरक्त भाव से घास फूस का घर छोड़ा।
फिर भी "मेरा वह अनुपम घर" याद करें वे मुनि ऐसा॥240॥

कोई कहीं भाग्यशाली जन मोह-महामल रहित हुए।
सत्य धर्म की रक्षा को मुनि, मणि समान सामर्थ्य धरें॥
परिग्रह का विस्तार तजा जो अघ-कानन को अग्नि समान।
भूतल में या देवलोक में ऐसे मुनि हैं पूज्य महान॥241॥

है सुबुद्धि जन को इस जग में प्राणप्रिया यह तपचर्या।
इन्द्रों को भी वन्द्य निरन्तर है सुयोग्य यह तपचर्या॥
तप कर भी यदि सांसारिक कामान्धकारमय सुख चाहे।
तो वह जड़मति अरे अरे रे! कलि के द्वारा घायल है॥242॥

मुनिवेषी हो किन्तु अन्यवश, संसारी दुःख भोगी है।
जीव स्ववश तो जीवन्मुक्त, जिनेश्वर से किञ्चित कम है॥243॥

(वीरछन्द)

अतः स्ववश मुनि जिनशासन में मुनिसमूह में शोभित है।
और अन्यवश मुनि भृत्यों में [1]नृपवल्लभ सम शोभित है॥244॥

हे मुनिवर! तुम स्वर्गादिक के क्लेशों के प्रति रति छोड़ो।
और मुक्ति के [2]कारण का कारण जो निज परमात्म भजो॥
वह परमातम निर्मल ज्ञान निकेतन, आनन्द से भरपूर।
निरावरण है और सुनय अथवा दुर्नय समूह से दूर॥245॥

जब तक ईन्धन तब तक अग्नि सदा प्रज्ज्वलित रहती है।
जब तक जीवों को चिन्ता है तब तक वे संसारी हैं॥246॥

जिसकी मति उदार है, जिसने भव कारण को नष्ट किया।
पूर्व कर्म को नाश मुक्ति को भी प्रमोद से प्राप्त किया॥
शुद्ध बोधमय और सदाशिवमय, विवेक द्वारा उत्पन्न।
मुक्ति प्राप्त वह स्ववश श्रेष्ठ मुनि सदा निरन्तर है जयवन्त॥247॥

कामदेव के नाशक पञ्चाचार, सुशोभित आकृतिवान।
अहो! अवञ्चक गुरु की वाणी मुक्ति सम्पदा का कारण॥248॥

जो निर्वाण दशा का कारण-ऐसे श्री जिनशासन को।
जान, लहें निर्वाण सम्पदा बार बार वन्दन उनको॥249॥

सुन्दर नारी और स्वर्ण की वाञ्छा तुमने नष्ट करी।
अतः योगियों के समूह में श्रेष्ठ स्ववश तुम हे योगी॥
कामदेवरूपी भीलों के शर से घायल चित वाले।
हम जैसों के लिए तुम्हीं हो भव-अरण्य में शरण सही॥250॥

अनशनादि तप का फल केवल इस शरीर का है शोषण।
अहो! स्ववश मुनि चरण-युगल के चिन्तन से मम जन्म सफल॥251॥

निजरस के विस्तार पूर से अघ को जिसने धो डाला।
समतारस से पूर्ण पवित्र पुराण सुस्थित मन वाला॥
जिसका मन है सदा स्ववश, जो शुद्ध सिद्ध भगवान समान।
तेजराशि में मग्न सहज वह जीव सदा रहता जयवन्त॥252॥

वीतराग सर्वज्ञ और निज वश योगी में किञ्चित भी।
भेद नहीं है किन्तु अरे रे ! हम जड़ मानें भेद सही॥253॥

स्ववश महामुनि इस भव में हैं सदा एक ही धन्य अहो।
जो अनन्यमतिवाले रहते हुए कर्म से बाहर हों॥254॥

इसप्रकार यदि भवदुःख नाशक आत्मनियत चारित्र हो तो।
मुक्तिश्री से होनेवाले सुख का अतिशय कारण हो॥
यही जानकर जो मुनि निर्मल समयसार का करते ज्ञान।
बाह्य क्रिया के त्यागी पाप वनों को दाहक अग्नि समान॥255॥

सहज परम आवश्यक मात्र एक ही जो अघनाशक है।
और मुक्ति का मूल वही आवश्यक अतिशय करना है॥
इससे विस्तृत सदा स्वरस से पूर्ण भरा है पुरुष पुराण।
कोई वचनातीत सहज शाश्वत सुखमय पाता निर्वाण॥256॥

स्ववश मुनीश्वर को उत्तम निज आत्म अनुभवन होता है।
और यही आवश्यक कर्म मुक्ति-सुखकारण होता है॥257॥

योगी सदा परम आवश्यक सहज कर्म से युक्त रहे।
चहुँगति जन्य सौख्य-दुखरूपी अटवी से वह दूर रहे॥
इसीलिए वह योगी है अति आत्मनिष्ठ अन्तर-आत्मा।
स्वात्मा से जो भ्रष्ट हुआ बहितत्त्वनिष्ठ वह बहिरात्मा॥258॥

भवभयकारी बाह्याभ्यन्तर जल्पभाव को छोड़ सदा।
समरसमय चित्-चमत्कार का करके जो स्मरण सदा॥
ज्ञान-ज्योति द्वारा जिसने निज अभ्यन्तर अङ्ग प्रगट किया।
अन्तरात्मा क्षीणमोह ने परम तत्त्व अन्तर देखा॥259॥

धर्म शुक्ल ध्यानामृतरूपी समरस में मुनि कोई रहे।
इनसे रहित मुनि बहिरात्मा, हम सुदृष्टि की शरण गहें॥260॥

बहिरात्मा अरु अन्तरात्मा यह विकल्प दुर्बुद्धि करें।
भव-रमणी को प्रिय विकल्प यह नहिं सुबुद्धिजन कभी करें॥261॥

जिसके नष्ट हुए हैं दर्शनमोह और ये चारित्रमोह।
संसार जनित सुख के कारण उन कर्मों को यह आत्मा छोड़॥
मुक्तिमूल निर्मल चारित्र में स्थित है वह चारित्र पुञ्ज।
वन्दन समरस-सुधा-समुद्र उछलने को जो पूरणचन्द्र॥262॥

अतः मुक्तिरूपी रमणी के पुष्टस्तन आलिंगन सौख्य।
की वाञ्छा युत भव्य सर्वदा सभी वचन रचना को छोड़॥
नित्यानन्द अतुल महिमाधारी निज में ही स्थित होते।
जगतजाल को निरालम्ब हो भविजन तृण समान लखते॥263॥

इस असार संसारोदधि में पापपूर्ण कलिकाल विलास।
अतः अनघ जिननाथ मार्ग में नहीं दृष्टिगत मुक्ति विलास॥
इसीलिए कैसे हो सकता वर्तमान में आत्म सुध्यान।
भवभयहारी निज-श्रद्धा स्वीकृत करते निर्मल मतिमान॥264॥

आतम ज्ञानी जीव मुमुक्ष पशुजनकृत लौकिक भय को।
घोर भवोत्पादक शुभ और अशुभ वचनों की रचना को॥
कनक-कामिनी सम्बन्धी जो मोहभाव को भी तजते।
मुक्ति हेतु अपने से अपने में अविचल स्थिति पाते॥265॥

आत्मप्रवाद कुशल ज्ञानी मुनि अज्ञानीकृतभय को छोड़।
लौकिक वचन समूह तजें, गहते शाश्वत सुखमय निज को॥266॥

भव-कारण स्थावर त्रस आदिक जीवों के हैं भेद अनेक।
सदा जन्म उत्पन्न करे जो कर्मों के भी भेद अनेक॥
निर्मल जिनशासन में लब्धि भी प्रसिद्ध बहु भेद कही।
अतः स्व-पर मतवालों से है वचन विवाद नहीं करणीय॥267॥

ज्यों लौकिक जन धन पाकर परसंग तजें अरु गुप्त रहें।
इसप्रकार ज्ञानीजन भी निज ज्ञान-निधि रक्षण करते॥268॥

जन्म-मरण रोगों का कारणभूत सकल पर-संग तजें।
हृदयकमल में बुद्धिपूर्वक पूर्ण विरक्ति भाव धरें॥
सहज परम आनन्द निराकुल निज में थिर पुरुषार्थ करें।
मोह क्षीण होने पर जग को नित हम तृण समान निरखें॥269॥

सकल पुराण-पुरुष योगी निज आतम के आराधन से।
कर्म राक्षसों का विनाश कर विष्णु और जयवन्त हुए॥
उन्हें मुक्तिकामी निस्पृह जो मन-अनन्य से नमन करें।
पापवनों को पावक वह उसके चरणाम्बुज जन पूजें॥270॥

कनक कामिनी सम्बन्धी जो हेय मोह का कर परित्याग।
रे मन ! निर्मल सौख्य हेतु तू परम गुरु से [1]वृष कर प्राप्त॥
नित्यानन्द स्वरूप निराकुल निरुपम गुण से भूषित जो।
दिव्य ज्ञानवाले परमातम में तुम शीघ्र प्रवेश करो॥271॥

इसप्रकार जो कविकमलों के लिए सुशोभित सूर्य समान।
पञ्चेन्द्रिय विस्तार रहित है देहमात्र बस परिग्रह जान॥
ऐसे पद्मप्रभमलधारी देव रचित इस टीका में।
ग्यारहवाँ निश्चय परमावश्यक स्कन्ध समाप्त हुआ॥

12

शुद्धोपयोग अधिकार

(वीरछन्द)

केवलज्ञानमूर्ति यह आतम नय-व्यवहार कला द्वारा।
वास्तव में सम्पूर्ण विश्व का नितप्रति है जानन हारा॥
मुक्तिलक्ष्मीरूपी कामिनि के कोमल [1]वदनाम्बुज पर।
कामक्लेश, सौभाग्य चिन्ह युत शोभा को फैलाता है॥
श्री जिनेश ने क्लेश और रागादिक मल का किया विनाश।
निश्चय से देवाधिदेव वे निज स्वरूप का करें प्रकाश॥272॥

जो अनुपम हैं धर्मतीर्थ के नायक सकल लोक के नाथ।
इन्हें सर्वतः वर्ते युगपत् नितप्रति दर्शन-ज्ञान प्रकाश॥
तिमिर समूह विनाशक रवि में युगपत ऊष्ण और परकाश।
जगजन पाते नेत्र तथैव उन्हें युगपत दृग-ज्ञान प्रकाश॥273॥

हे जिन ! सम्यग्ज्ञानरूप नौका में आरोहण करके।
भवसागर को लाँघ आप अतिशीघ्र सुशाश्वतपुर पहुँचे॥
हे प्रभु ! अब मैं उसी मार्ग से शाश्वतपुर में हूँ जाता।
क्योंकि लोक में उत्तम पुरुषों को है अन्य शरण भी क्या? ॥274॥

केवलज्ञान-भानु ऐसे जिनदेव सदा जयवन्त रहें।
जो समरससमय अशरीरी सुखदायक मुक्ति को प्रिय हैं॥
उसके वदन कमल पर कोई अतुल कान्ति हैं फैलाते।
स्नेहमयी कान्ता को सुख का कौन नहीं कारण होते॥275॥

2

मुक्ति कामिनी वदनाम्बुज में [1]अलिलीला धर लीन हुए।
वास्तव में अनुपम अनंग सुख को वे श्री जिनवर भोगें॥276॥

एक सहज निज परमात्मा को करे प्रकाशित ज्ञान प्रकाश।
और त्रिलोक अलोक निवासी ज्ञेयों को भी करे प्रकाश॥
नित्य शुद्ध ऐसा क्षायिक दर्शन भी स्व-पर प्रकाशक है।
इनके द्वारा आत्मदेव भी निज-पर ज्ञेय प्रकाशक है॥277॥

नहीं सर्वथा ज्ञान आत्मा नहीं सर्वथा दर्शन है।
उभय स्वरूपी स्व-पर विषय को जाने और देखता है॥
आत्मा और ज्ञान-दर्शन में [1]संज्ञादिक का भेद सही।
अग्नि और ऊष्णता तुल्य इनमें वास्तव में भेद नहीं॥278॥

दर्श-ज्ञान से युक्त अतः यह आत्मा सचमुच धर्मी है।
पञ्चेन्द्रियरूपी हिम को जो रविसमान समदृष्टि है॥
उसमें अविचल स्थित रहकर जीव मुक्ति को पाता है।
मुक्ति प्रगट हुई है जो वह तो सहज दशा से सुस्थित है॥279॥

ज्ञान पुञ्ज इस आत्मा को है केवलदर्शन प्रगट हुआ।
इसीलिए व्यवहार दृष्टि से सर्व लोक को है देखा॥
केवलज्ञान कला द्वारा यह मूर्त-अमूर्त पदार्थों को।
जाने आत्मा, परम-श्रीरूपी कामिनि का वल्लभ हो॥280॥

निश्चयनय से आत्मा है यह निज परकाशक ज्ञान स्वरूप।
और आत्मा बाह्यालम्बन नाशक जो दर्शन उसरूप॥
एकाकार स्वरस विस्तार सुपूर्ण अतः पुराण पावन।
निर्विकल्प महिमा में निश्चित वास करे नित यह आतम॥281॥

जो है एक विशुद्ध और निज अन्तः शुद्धि का आवास।
महिमामय, अत्यन्त धीर, निज आत्मा में नित अविचल वास॥

निश्चय से यह आत्मा ऐसे सहज एक परमातम को।
उसको नित निरखे जिसमें व्यवहार प्रपञ्च न किञ्चित हो॥282॥

यह तृतीय सर्वोत्तम चक्षु जिसका केवलज्ञान सुनाम।
जिससे जग ने महिमा जानी ऐसे तीर्थनाथ भगवान॥
लोकालोक अचेतन-चेतन निज-पर को सम्यक् जानें।
जो हैं त्रिभुवन के गुरु उनका है अनन्त शाश्वत निज धाम॥283॥

युगपत एक समय में नहिं देखें जो त्रिभुवन तीनों काल।
उस जड़ को दर्शन प्रत्यक्ष तथा सर्वज्ञ न किसी प्रकार॥284॥

वास्तव में सम्पूर्ण लोक को जानें तीर्थनाथ भगवान।
एक अनघ निज सुख में स्थित है जो निज ज्ञायक भगवान -
उसे न जानें तीर्थनाथ वे - ऐसा यदि कोई मुनिराज।
कहते हैं व्यवहार मार्ग से, तो नहिं दोषी वे मुनिराज॥285॥

शुद्ध जीव का है स्वरूप यह ज्ञान अतः मेरा आतम।
वर्तमान में निश्चय से है जाने अपना निज आतम॥
और यदि यह ज्ञान प्रगट निज सहज परिणति के द्वारा।
जाने नहिं प्रत्यक्ष आत्म को निश्चित उससे भिन्न हुआ॥286॥

निज को दर्शन ज्ञानरूप, दृग ज्ञान भाव आत्मा जानो।
स्पष्ट प्रकाशित करे आत्मा निज-पर ऐसे तत्त्वों को॥287॥

भुवन-भवन में स्थित सर्व पदार्थ जानते अरु देखें।
मोहक्षीण है अतः किसी को भी कदापि नहिं ग्रहण करें॥
ज्ञान-ज्योति के द्वारा जिनने नष्ट किया मलरूपी क्लेश।
केवल ज्ञाता-दृष्टा रहते महिमामय वे देव जिनेश॥288॥

इच्छा सहित वचन रचना का केवलि प्रभु को नहीं विधान।
अतः लोक के एक नाथ वे जिनवर अतिशय महिमावान॥

द्रव्यबन्ध अरु भावबन्ध उनको हो सकता है कैसे?।
मोहक्षीण है अतः उन्हें नहिं रागद्वेष का पुञ्ज अरे !॥289॥

जो त्रिभुवन के गुरु हैं जिनने चार घाति का किया विनाश।
जिनका ज्ञान त्रिलोक-भवन के सकल पदार्थों का आवास॥
एक वही साक्षात् देव हैं उन्हें बन्ध या मोक्ष नहीं।
उन्हें नहीं है कोई मूर्छा और कोई चेतना नहीं॥290॥

सचमुच इन जिन भगवन्तों में धर्म-कर्म का नहीं प्रपञ्च।
वीतरागमय सदा विराजित अतः अतुल हैं महिमावन्त॥
निज सुख में हैं लीन सदा वे, शोभावन्त श्री भगवान।
ज्ञान-ज्योति से पूर्ण लोक में छाए मुक्ति-वधू के नाथ॥291॥

इन्द्रासन कम्पन-कारण जब केवलज्ञान उदित होता।
उन पुराण पुरुषों को सब वर्तन हो किन्तु न मन होता॥
धर्म हेतु रक्षामणि सम जो मुक्तिमुखाम्बुज को रवि सम।
पाप-वनों को अग्नि तुल्य जो सचमुच महिमावन्त अगम्य॥292॥

छह [2]अपक्रमयुत संसारी से सिद्धों का लक्षण है भिन्न।
इसीलिए वे सिद्ध ऊर्ध्वगामी हैं और सदाशिवलीन॥293॥

नाश किया है भव बन्धन का अतः अतुल वे महिमावान।
सुरगण के प्रत्यक्ष स्तवन का विषय नहीं वे सिद्ध महान॥
"लोक अग्र में सुस्थित वे देवाधिदेव" व्यवहार कथन।
"निज में अविचल स्थिर रहते" यह जानो परमार्थ वचन॥294॥

पञ्च परावर्तन से विरहित हैं [1]पञ्च मोक्षफल दायक है।
[2]पञ्च संसरण मुक्ति हेतु हम पञ्च सिद्ध को नमन करें॥295॥

अविचल और अखण्डज्ञानमय जो अद्वन्द में निश्चल लीन।
दुस्तर सकल पाप-वन दहने को दावानल तुल्य प्रवीण॥
निज से ही उत्पन्न सुखामृत दिव्य जिसे तू भजे सुजान।
भजो उसी को जिससे सकल विमल हो तुझको केवलज्ञान॥296॥

पाँच भाव हैं जिनमें पञ्चम परम भाव ही शाश्वत है।
भव विनाश का कारण सम्यग्दृष्टि को ही गोचर है॥
राग-द्वेष का पुञ्ज नाशकर बुधजन परमभाव जानें।
एक वही कलियुग में अघवन दाहक मुनिवर शोभित हैं॥297॥

भव भव के सुख दुःख नहीं होते हैं इस जग में जिसको।
जन्म-मरण अरु पीड़ा, बाधा भी न रहें परमातम को॥
मुक्ति सौख्य की प्राप्ति हेतु मैं काम सुखों से विमुख हुआ।
नित्य नमूँ स्तवन करूँ सम्यक् प्रकार से मैं उनको॥298॥

निज आराधन रहित जीव ही [1]सापराध कहलाते हैं।
इसीलिए हम आनन्द मंदिर आतम को नित नमते हैं॥299॥

अनुपम गुण समूह से शोभित निर्विकल्प शुद्धातम में।
इन्द्रिय का अति विविध विषम वर्तन किञ्चित् नहिं आतम में॥
तथा चतुर्गति के कारण संसारी गुण का पुञ्ज नहीं।
उसमें सदा प्रकाशित निजसुखमय बस एक मुक्ति पद ही॥300॥

जो निर्वाण धाम में स्थित पाप तिमिर का लेश नहीं।
जो विशुद्ध उन परम ब्रह्म में कर्म प्रकृति नहिं किञ्चित् भी॥
सिद्धरूप उन ज्ञानपुञ्ज में किञ्चित् रहें न चारों ध्यान।
उनमें ऐसी कोई मुक्ति है मन-वच का नहिं नाम निशान॥301॥

बन्ध छेद होने से एवं नित्य शुद्ध ऐसे भगवान।
सिद्ध प्रसिद्ध प्रभू में है अत्यन्तपने यह केवलज्ञान॥
सब कुछ जिसका विषय अहो वह साक्षात् दर्शन होता।
सुख अनन्त अरु शुद्ध शुद्धवीर्यादि पुञ्ज-गुणमणि होता॥302॥

जिनमत संमत मुक्ति में अरु मुक्तजीव में भेद नहीं।
युक्ति से अथवा आगम से भेद न जानें हम कुछ भी॥
और लोक में कोई भव्यजन सकल कर्म निर्मूल करे।
तो वह परम श्रीरूपी कामिनि का प्रियतम वल्लभ हो॥303॥

गति हेतु का है अभाव इसलिए जीव अरु पुद्गल का।
लोक शिखर के ऊपर उनका गमन कभी भी नहिं होता॥304॥

मुक्ति का कारण होने से नियमसार अरु उसका फल।
बुध पुरुषों के हृदय कमल में जो नित रहता है जयवन्त॥
सूत्रकार श्री कुन्दकुन्द ने भक्तिपूर्वक रचा इसे।
वास्तव में वह भव्य जनों को मोक्ष-महल का मारग है॥305॥

देहरूप तरु सघन भयंकर दुःखरूपी पशु हैं जंगली।
काल अग्नि सबको खा जाती सूख रहा मतिरूपी नीर।
कुनयरूप पथ के कारण जो मोही को अति दुर्गम है।
उस संसार विकट अटवी में शरण जैन ही दर्शन है॥306॥

लोकालोक निकेतन है जिन नेमिप्रभू का ज्ञान शरीर।
जिनकी शंखध्वनि से सारी पृथ्वी अतिशय काँपी थी॥
उनका स्तवन करने में इस जग में सुर नर कौन समर्थ।
अति उत्सुक जिन भक्ति उसमें कारण मैं जानूँ यह अर्थ॥307॥

कविजनरूपी कमलों को विकसाने वाला अद्भुत सूर्य।
सुन्दर पद समूह द्वारा यह उत्तम शास्त्र रचा भरपूर॥
जो विशुद्ध आत्मा के वाञ्छक जीव इसे धारण करते।
निज मन में, वे परम श्रीरूपी कामिनि वल्लभ होते॥308॥

पद्मप्रभ नामक उत्तम सागर से जो उत्पन्न अहो।
उर्मिमाल[1] यह सत्पुरुषों के चित में स्थित सदा रहो॥309॥

लक्षण शास्त्रों से विपरीत कोई पद इसमें किञ्चित हो।
उसे लोप कर सज्जन कविगण उत्तम पद निर्माण करो॥310॥

जब तक तारागण से शोभित चन्द्रबिम्ब उज्ज्वल नभ में।
हेय वृत्ति नाशक यह टीका रहो सज्जनों के उर में॥311॥

इसप्रकार जो कविकमलों के लिए सुशोभित सूर्य समान।
पञ्चेन्द्रिय विस्तार रहित है देहमात्र बस परिग्रह जान॥
ऐसे पद्मप्रभमलधारी देव रचित इस टीका में।
श्रुतस्कन्ध शुद्धोपयोग अधिकार बारवाँ पूर्ण हुआ।

श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत

श्री प्रवचनसार की

श्रीमद्मृतचन्द्र सूरि कृत तत्त्वप्रदीपिकावृत्ति में समागत कलशों का हिन्दी पद्यानुवाद

~~वीरछन्द~~ हरिगीतिका

जो सर्वव्यापी एक चेतनरूप अनुभव सिद्ध है।
उत्कृष्ट ज्ञानानन्दमय उस आत्मा को नमन है ॥1॥

वीरछन्द

मोहरूप जो सघन तिमिर का लीला में ही करें विनाश।
अनेकान्तमय तेज सदा जयवन्त, जगत को करे प्रकाश ॥2॥

परमानन्द सुधारस के जो प्यासे हैं उन भविजन को।
तत्त्व प्रकाशक प्रवचनसार ग्रन्थ की टीका रचूँ अहो ॥3॥

जो है कर्म विनाशक एवं त्रैकालिक सारे जग को।
युगपत् जाने, किन्तु मोहतम, अतः न उनसे तन्मय हो॥
अतिविकसित विस्तृत ज्ञप्ति से स्वयं पिये सब ज्ञेयस्वरूप।
वह त्रिलोक को पृथक् अपृथक् जाने ज्ञानमूर्ति शिवरूप ॥4॥

प्राप्त हुआ शुद्धोपयोग को आत्मा स्वयं धर्ममय हो।
शाश्वत् सुखरस के प्रसार से सरस ज्ञान हो तन्मय हो॥
अविचलरूप प्रकाशित ज्योति स्वरूप सहज जो विलसित है।
जो निष्कम्प प्रकाशित शोभा रत्नदीप की पाता है ॥5॥

आत्माश्रित इस ज्ञान तत्त्व का यथा-अर्थ निश्चय करके।
केवलज्ञान प्रगट करने को प्रशम प्राप्ति उद्देश्य लिए॥

d:\work\pravachan\prav pd.p65

ज्ञेयतत्त्व जिज्ञासु जगत को द्रव्य और गुण पर्यय से।
जाने, मोहांकुर उत्पन्न कभी न किञ्चित हो जिससे ॥6॥

जिसने पर द्रव्यों से निज को भिन्न जानकर हटा लिया।
और विशेषों का समूह सामान्य मात्र में डुबा दिया॥
उद्धत मोह लक्ष्मी को नय शुद्ध सदा ही लूट रहा।
निज उत्कट विवेक से उसने आत्मरूप को भिन्न किया॥7॥

इसप्रकार जिस भव्य जीव ने पर-परिणति नाश किया।
कर्त्ता-कर्म आदि भेदों की भ्रमणा का भी नाश किया॥
शुद्ध आत्मा को पाकर चिन्मार्ग तेज में लीन रहें।
स्वाभाविक माहात्म्य प्रकाशस्वरूप सर्वदा मुक्त रहे॥8॥

इस प्रकार सामान्य द्रव्य को जान हृदय गंभीर किया।
द्रव्य विशेषों के स्वरूप का परिज्ञान प्रारम्भ किया॥9॥

ज्ञेय तत्त्व समझाने वाले शब्दब्रह्म जिन आगम में।
हम डूबे शुद्धात्मद्रव्यमय एक वृत्ति से युक्त रहें॥10॥

एक समय में सकल जगत को ज्ञेयरूप कर लेता है।
भेदरूप जो होय उन्हें यह ज्ञानरूप कर लेता है॥
और ज्ञान जो स्व-पर-प्रकाशक, उसे आत्मामय करता॥
शीघ्र प्राप्त कर ब्रह्म आत्मा, ज्योति स्वरूप प्रगट होता॥11॥

हरिगीतिका

चरण के अनुसार होता, द्रव्य ऐसा जानिये।
द्रव्य के अनुसार होता, चरण निश्चित मानिये॥
परस्पर सापेक्ष दोनों इसलिए मोक्षार्थिजन।
लेकर चरण या द्रव्य का आश्रय करो शिवपथ गमन॥12॥

द्रव्य की हो सिद्धि यदि तो, चरण की भी सिद्धि है।
अथवा चरण की सिद्धि में ही द्रव्य की भी सिद्धि है॥
यह जानकर, जो शुभाशुभ से नहिं विरत वे अन्यजन।
द्रव्य से अविरुद्ध चारित्र आचरों हे भव्यजन ! ॥13॥

जो कुछ कथन के योग्य था वह सभी कुछ है कह दिया।
मात्र इतने से समझले कोई भी निर्मल हिया॥[1]
अन्यथा विस्तार अति हम करें वाणी का अहो।
किन्तु दुस्तर जाल यह व्यामोह का नासमझ को॥14॥

वीरछन्द

है पुराण पुरुषों द्वारा जो सावधान होकर सेवित।
उत्सर्ग और अपवाद मार्ग से विविध भूमिकाओं में व्याप्त॥
चरण प्राप्त करके फिर यतिगण क्रमशः अतुल निवृत्ति करो।
चित् सामान्य विशेष प्रकाशमयी निज में ही लीन रहो॥15॥

एक किन्तु जो प्रतिपादक के आशय वश हो रहा अनेक।
अतः मुक्ति का मार्ग त्रिलक्षण अथवा उसका लक्षण एक॥
ज्ञाता-दृष्टा में निज परिणति बाँध अचल अवलम्बन लो।
लोक ! शीघ्र उल्लसित चेतना के विकास को शीघ्र लहो॥16॥

इस प्रकार शुभयोग जनित किञ्चित् प्रवृत्ति का सेवन कर।
संयम के सौष्ठव से क्रमशः परम निवृत्ति को पाकर॥
जिसका रम्य उदय लीला में अखिल विश्व विस्तार लहे।
केवल शाश्वत् ज्ञानानन्दमय दशा यति अनुभवन करे॥17॥

अहो शास्त्र की कलगी की शोभा जैसी ये गाथायें।
अर्हन्तों का अद्वितीय शासन सम्पूर्ण प्रकाश करें॥

मोक्ष और संसार मार्ग की भिन्न लक्षणा स्थिति को।
प्रगट करें जग में ये निर्मल पञ्चरत्न जयवन्त रहो ॥18॥

हरिगीतिका

स्याद्वाद लक्ष्मी महल के वश में हुए जो वर्तते।
उन नय समूहों से लखें अथवा लखें परमाण से॥
तो भी अनन्तानन्त धर्मस्वरूप अपने आत्म को।
वे शुद्ध चेतनमात्र भीतर देखते हैं अहो ॥19॥

वीरछन्द

आनन्दामृत भरी हुई केवल सरिता में डूबा है।
जिसमें लोक प्रकाशक ज्ञान लक्ष्मी ही बस मुख्य रहे॥
वह स्वतत्त्व जो रत्न-किरणवत् स्पष्ट दृष्ट अरु उलसित है।
स्यात्कार लक्षण जिन-शासन के वश से जन प्राप्त करें॥20॥

"व्याख्या योग्य जगत अरु आतम, वाणी गुन्थन व्याख्या है।
व्याख्याता अमृतचन्द्र" - ऐसे मोही हो जन मत नाचो॥
स्याद्वाद विद्या बल से तुम शुद्ध विज्ञान कला द्वारा।
शाश्वत् तत्त्व प्राप्त करके अब अव्याकुल होकर नाचो॥21॥

इस प्रकार बल पूर्वक थोड़ा बहुत तत्त्व जो कहा गया।
अग्नि समर्पित होम वस्तु-सम चेतन में सबकुछ स्वाहा॥
आज प्रबलता से उस चेतन को ही कर अनुभव चेतन।
क्योंकि लोक में अन्य नहीं कुछ चेतन ही है तत्त्व परम॥22॥

* * *

आदरणीय रजनीभाई
सादर जयजिनेन्द्र

आपका E Mail 1 सितम्बर को अलीगढ़ में देखा था। मैं 4 सितम्बर को शिकागो आया हूँ। 6 To 10 मेलवाकी रहूँगा और 10 की शाम तक शिकागो आ जाऊँगा। आप 10 के बाद मुझसे सम्पर्क कर लें।

अभयकुमार जैन

परमपूज्य श्री पद्मप्रभमलधारिदेव मुनिराज विरचित

श्री नियमसार कलश

(हिन्दी पद्यानुवाद)

1

जीव अधिकार

(हरिगीतिका)

जो भवजयी होकर प्रकाशित, सुगत शिव गिरिधर कहो।
वागीश अथवा जिनप्रभू की, वन्दना करता अहो॥
आपके होते हुए क्यों नमूँ, मुझ-सम हीन जो।
मोहवश अरु कामवश शिव विष्णु ब्रह्मा बुद्ध को॥1॥

दोहा

जो श्री जिन-मुख-कमल का, वाहन है अभिराम।
दो नय से सबकुछ कहे वाणी उसे प्रणाम॥2॥

(हरिगीतिका)

सिद्धांतरूपी श्रीपति हैं सिद्धसेन मुनीन्द्र जो।
अकलंक मुनिवर तर्करूपी पंकजों को सूर्य जो॥
पूज्यपाद मुनीन्द्र हैं जो शब्द-सिन्धु चन्द्र सम।
वन्दन इन्हें, इन गुण सहित मुनि वीरनन्दि को नमन॥3॥

दोहा

भव्यजनों की मुक्ति को अरु आतम की शुद्धि।
नियमसार टीका कहूँ, यह तात्पर्यवृत्ति॥4॥

(वीरछन्द)

गुणभूषण गणधर से विरचित श्रुतधर परम्परा से व्यक्त।
परमागम के अर्थकथन में मन्दबुद्धि हम तो असमर्थ॥5॥

दोहा

परमागम के सार की पुष्ट रुचि का वेग।
प्रेरित होता आज मन पुनः पुनः अतिवेग॥6॥

प्रथम कहे पञ्चास्तितन द्रव्य तत्त्व छह सात।
सूत्रकार मुनिराज ने प्रत्याख्यान सुख्यात॥7॥

(वीरछन्द)

शुद्ध भाव के द्वारा जिनने काम शत्रु का किया विनाश।
त्रिभुवन जन द्वारा जो पूजित पूर्ण ज्ञान है जिनका राज्य॥
सुरगण जिनको करें नमन जो जन्मवृक्ष का बीज नशें।
केवल-श्रीपति समवशरण के वासी प्रभु जयवन्त रहें॥8॥

कभी कामिनी के रति-सुख की प्राप्ति हेतु नर करे गमन।
और कभी धन की रक्षा में प्रेरित होता उनका मन॥
जो पण्डित जिनमार्ग प्राप्त कर निज आतम में रति करें।
वास्तव में वे ही पण्डितगण मुक्ति-वधू का वरण करें॥9॥

इसप्रकार विपरीत रहित सर्वोत्तम रत्नत्रय पाऊँ।
मुक्ति कामिनी से उत्पन्न अतीन्द्रिय सुख मैं नित भाऊँ॥10॥

शुद्ध रत्नत्रयमय आतम ही मोक्षमार्ग है मुनिवर को।
ज्ञान न इससे कोई अन्य है दर्शन भी नहिं अन्य अहो॥
और शील भी अन्य नहीं है यही कहें अर्हन्त प्रभो।
इसे जानकर पुनः न जननी-उदर बसे वह भव्य अहो॥11॥

भवभय नाशक भगवन्तों के प्रति क्या तुझको भक्ति नहीं?
तो जानो तुम भवसमुद्र-थित मगरमच्छ के मुख में ही॥12॥

(वीरछन्द)

शत इन्द्रों से वन्दनीय जो सम्यग्ज्ञान स्वराज्य विशाल।
लौकान्तिक देवों के स्वामी अघ समूह का किया विनाश॥
श्रीकृष्ण भी जिन्हें नमें, जो भव्य-कमल को सूर्य समान।
आनन्दभू हे नेमिजिनेश्वर! शाश्वत-सुख तुम करो प्रदान॥13॥

जैसे कमल पुष्प के भीतर अलिगण सहज समाते हैं।
वैसे जिनके ज्ञान-कमल में लोकालोक समाते हैं॥
उन नेमीश्वर तीर्थंकर की सचमुच पूजा करता हूँ।
उच्च तरंगोंयुत भवदधि को निज भुजबल से तरता हूँ॥14॥

जो अत्यंत मनोहर शुद्ध, तथा शिवपथ के कारण हैं।
भव्यों के कर्णों को अमृत, दावानल को जल सम हैं॥
जैन योगियों द्वारा वन्द्य सदा ऐसे जिनराज वचन।
मन-वच-तन से नित प्रति करता मैं उन वचनों को वन्दन॥15॥

जो जिनपति के मार्ग उदधि के मध्य सदा स्थिर रहता।
वह षट्द्रव्य समूह रत्न है महातेज किरणों वाला॥
तीक्ष्ण बुद्धियुत जो नर उसको भूषणार्थ उर धरते हैं।
परमश्रीरूपी रमणी को वे नर निश्चित वरते हैं॥16॥

जो नर जिनवर कथित ज्ञान के सकल भेद को लेता जान।
निज स्वरूप में थिर रहकर वह परभावों को तजे सुजान॥
निज चैतन्य चमत्कारमय भावमात्र में होता लीन।
परमश्रीरूपी कामिनी को त्वरित वरे वह पुरुष प्रवीण॥17॥

इसप्रकार जो कहा गया वह भेदज्ञान को उर में धार।
सुकृत-दुष्कृत या सुख-दुःख का करते भव्य जीव परिहार॥
ये समस्त शुभ-अशुभ भाव ही भव-दुख के हैं कारण मूल।
इन्हें त्याग कर जीव प्राप्त करता है शाश्वत सुख सम्पूर्ण॥18॥